

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182075

UNIVERSAL
LIBRARY

कीर्ति स्तम्भ

[ऐतिहासिक नाटक]



नाटककार
हरिकृष्ण 'प्रेमी'

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली



प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज

कश्मीरी गेट

दिल्ली-६.

Checked 1969

विद्यार्थी संस्करण

Checked 1965

मूल्य

रु० ~~२.५०~~
२.२५

मुद्रक

इण्डिया प्रिंटर्स

एस्प्लेनेड रोड

दिल्ली

दर्पण

भारतीय इतिहास में राजपूत-काल की वीर-गाथाएं मृतवत् प्राणों की नव जीवन और नव स्फूर्ति प्रदान करने वाली हैं। देश की उदित हो रही पीढ़ी को वीर, साहसी, त्यागी, निर्भय एवं देशप्रेमी बनाने के लिए इन वीर-गाथाओं का श्रोत्रस्वी शब्दों में उपस्थित किया जाना आवश्यक है। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि वीर पुरुषों के केवल वीरतापूर्ण कार्यों के वर्णन से ही राष्ट्र को बलवान् बनाने की शक्ति नहीं पा सकेंगे। वीरता, साहस और निर्भयता बहुत ऊँचे एवं अपेक्ष्य गुण हैं, लेकिन इन गुणों के साथ स्वार्थत्याग, बलिदान, विवेक और उदारता आदि गुणों का समावेश भी अपेक्षित है। राजपूत के समान वीर, साहसी, आन पर प्राण देने वाली जाति संसार में सम्भवतः दूसरी नहीं है, लेकिन फिर भी ये गुण राजपूतों को पराधीनता के बन्धन में बंधने से बचा नहीं सके। इसका कारण उनमें दूरदर्शिता का अभाव, पारस्परिक एकता का न होना एवं अपनी शक्ति को पारस्परिक कलह में बर्बाद करते रहता है। यह कलह केवल पड़ोसी राज्यों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि एक ही राजकुल के व्यक्ति मुकुट-मोह में पड़कर एक दूसरे के खून के प्यासे बन गए। बेटे ने बाप के प्राण लिए, भाई ने भाई का गला काटा; ऐसे मनुष्यता को लज्जित करने वाले उदाहरण त्याग, तप और बलिदान की संस्कृति वाले भारत ने उपस्थित किए। प्रस्तुत नाटक 'कीर्ति-स्तम्भ' गृह-कलह के ऐसे ही ऐतिहासित घटना-चक्र को लेकर लिखा गया है।

मेवाड़ के इतिहास में महाराणा कुम्भा के काल में मेवाड़ राज्य की कीर्ति और शक्ति उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। कुम्भा ने अनेक बार

मालवा के सुलतान और गुजरात के बादशाह को पराजित किया एवं दिल्ली की लोदी सल्तनत का भी दर्प चूर्ण किया। कुम्भा केवल तलवार के ही धनी नहीं थे, अपितु उन्होंने अपने राज्यकाल में साहित्य एवं ललित कलाओं की अभिवृद्धि भी की। ऐसे गुणी, वीर पुरुष, सुशासक, कलाप्रेमी का प्राणान्त मुकुट के मोह में विवेक और मनुष्यता को खो देने वाले अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी (उदयसिंह) द्वारा हुआ। इस घटना के बाद मेवाड़ के राजघराने में कलह का तांडव प्रारम्भ हुआ, जिसने मेवाड़ राजवंश के उज्ज्वल यश को धब्बा तो लगाया ही, साथ ही मेवाड़ राज्य का विस्तार कम कर दिया, उसके हाथ से राजपूतों का नेतृत्व भी छिनवा दिया। महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र संग्रामसिंह (राणा सांगा) की दूरदर्शिता, त्याग, वीरता एवं साहस ने इस अन्तः-कलह की ज्वाला को शान्त किया और मेवाड़ के गत गौरव को पुनः प्राप्त ही नहीं किया बल्कि उसे भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी ने पिता की हत्या कर मेवाड़ का राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण किया था। तब हत्यारे के अनुज रायमल सामन्तों एवं प्रजा के सहयोग से अपने अग्रज को परास्त कर मेवाड़ के महाराणा बने। ऊदाजी शान्त होने वाले जीव न थे, वह दिल्ली के लोदी बादशाह की शरण में गए और अपनी पुत्री का विवाह उससे करने का वचन देकर सहायता प्राप्त की। ऊदाजी की पुत्री ज्वाला एवं पुत्र सूरजमल को अपने पिता का यह कार्य पसन्द नहीं आया और उन्होंने पिता के विरुद्ध रायमल का साथ दिया। दिल्ली की सेना पराजित हुई और ऊदाजी के जीवन का भी अन्त हो गया। मेवाड़ के राजकुल का सम्मान रखने के लिए पिता से भी विद्रोह करने वाले सूरजमल के हृदय में भी मेवाड़ के राज मुकुट का मोह जागा और महाराणा रायमल के तीनों पुत्रों—संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल में भी युवराज-पद पाने के लिए प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हुई। इस अन्तःकलह ने भीषण रूप धारण किया। इसी अन्तःकलह का चित्रण प्रस्तुत नाटक है।

सूरजमल को कर्नल टाड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनाल्स आफ राजस्थान' में एक स्थान पर संग्रामसिंह का काका (चाचा) लिखा है, दूसरे स्थान पर

ऊदाजी का पुत्र । मैंने नाटकीय सुविधा के लिए उसे ऊदाजी का पुत्र मान लिया है । ऐतिहासिक नाटक ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लिखा जाता है, फिर भी इतिहास और नाटक में कुछ अन्तर आ ही जाता है, क्योंकि नाटककार कल्पना की कूची से इतिहास के फीके चित्रों में रंग भरकर उन्हें आकर्षक बनाता है ।

प्रस्तुत नाटक की लेखन-कला के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है । मेरे अन्य नाटकों के समान यह भी तीन अंकों में और प्रत्येक अंक कुछ दृश्यों में विभाजित है । आज के कुछ भारतीय नाटककार विदेशी भाषाओं के नाटकों की देखादेखी अंकों का दृश्यों में विभाजन करना छोड़ रहे हैं, किन्तु नाटकों में अनेक स्थानों पर विभिन्न कालों में घटित घटनाओं का कथोपकथन में वर्णन करना पड़ता है, जो वर्णन पाठक अथवा दर्शक को उबा देता है । अंकों को दृश्यों में विभाजित करने से रंगमंच पर अधिक क्रियाएं एवं अधिक घटनाएं होती हुई दिखाई जा सकती हैं, जिससे नाटक में अधिक चुस्ती और गति आती है ।

भारत के रंगमंचों को विज्ञान की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त नहीं है । यहां घूमने वाला (Revolving) रंगमंच नहीं है, अतः यहां का नाटककार दृश्य-रचना में अनेक बंधनों में बंधा रहता है । मान लीजिए, अभी एक राज-महल का दृश्य दिखाया गया, इसके बाद फिर किसी बड़े भवन के अन्दर का दृश्य दिखाना है—आज यह भारत के रंगमंच पर सम्भव नहीं है । एक गहरे दृश्य (Deep Scene) के बाद दूसरा दृश्य, जिसमें सजावट भी है, नहीं दिखाया जा सकता; इसीलिए दोनों के बीच कम गहरा दृश्य, जिसमें रंगमंच की बहुत कम चौड़ाई प्रयोग में आए और सजावट भी न करनी पड़े, रखना पड़ता है, ताकि रंगमंच का जो भाग पर्दे के पीछे है, उसमें आगामी दृश्य तैयार होता रहे । ऐसा करने में कथा को कभी-कभी अनावश्यक मोड़ देना पड़ता है, किन्तु यदि नाटककार रंगमंच का ध्यान रखता है तो उसे ऐसा करना ही पड़ता है ।

इस नाटक में स्वगत एवं एकान्त भाषण सर्वथा नहीं हैं । स्वगत भाषण तो अस्वाभाविक है ही और एकान्त भाषण कहीं स्वाभाविक हो सकता है—जैसे किसी पागल के चरित्र में—किन्तु अधिकांश में अस्वाभाविक ही होता है ।

एकान्त भाषण में पात्र के मस्तिष्क में चलने वाला विचार-संग्रह ही प्रकट होता है। किन्तु क्या स्वाभाविक जीवन में कोई इस प्रकार सोचने की क्रिया करता है कि वह चिल्लाकर बड़बड़ाने लगे।

नाटक में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए। थोड़े पात्रों के चरित्र विकसित करने में सुविधा रहती है। इस नाटक में मालवा के सुलतान, गुजरात के बादशाह, दिल्ली के बादशाह, संग्रामसिंह की माता, सिरौही-नरेश और उसकी पत्नी, मेवाड़ की राजकुमारी आनन्ददेवी, राव सूरतान आदि, जिनका कथानक से कुछ सम्बन्ध भी है, रंगमंच पर लाए ही नहीं गए। किसी पात्र को एक-दो दृश्यों में लाना कुछ जंचता नहीं है। उनके चरित्रों की भली भांति प्रकट करने के लिए उनसे सम्बन्ध रखने वाले दृश्य बढ़ाने पड़ते हैं और नाटक उपन्यास की भांति बृहदाकार हो जाता है।

नाटक में अधिक पात्र नहीं होने चाहिए—इसी प्रकार कथानक का फैलाव बहुत लम्बी अवधि में नहीं करना चाहिए। समर-भूमि में अस्सी घाव खाने वाले पराक्रमी संग्रामसिंह का चरित्र भारतीय इतिहास में अपने शौर्य, सूक्ष्मबुद्धि और प्रभाव में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस नाटक में यदि उनके सम्पूर्ण जीवन के चित्रण के मोह में पड़ जाता तो नाटक अपने उद्देश्य को तो खो ही देता, साथ ही कथानक की कड़ियां शिथिल हो जातीं। अतः कीर्ति-स्तम्भ का कथानक बहुत थोड़ा-सा रखा गया है। संग्रामसिंह के जीवन के अन्तिम भाग पर एक नाटक अलग से लिखने का मेरा विचार है। उन्होंने भारत पर बाबर का राज्य स्थापित न होने देने का भरसक प्रयत्न किया था एवं आने वाले खतरे से भारतीय राजाओं को सावधानकर एक झण्डे के नीचे उन्हें एकत्र किया था। किन्तु एक-दो भारतीय राजाओं के विदेशी आक्रमणकारी के प्रलोभन में फँसकर देशद्रोह करने के कारण उन्हें असफल होना पड़ा था एवं अन्त में उनके अपने ही सामन्तों के विश्वासघात ने उनके प्राण ले लिए थे।

मैंने नाटकों की रचना निरुद्देश्य नहीं की है। भारत सदियों की पराधीनता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतन्त्रता की रक्षा भी

करनी है एवं राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से उन दुर्बलताओं को दूर करे जिन्होंने हमें पराधीनता के पाश में बांधा; उन गुणों को ग्रहण करें जिन्होंने हमें अभी तक जीवित रखा और फिर स्वतन्त्र किया तथा उन गुणों का विकास करें जिनकी राष्ट्र के नव निर्माण में अपेक्षा है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

हेमंत को

चाहते हो तुम कि मैं तुमको खिलौना दूँ ।
हां, खिलौना चांद-सा सुन्दर सलौना दूँ ।
किन्तु तुमको दे रहा मैं अक्षरों की दीपमाला ।
विश्व का तम कर न पाए ज़िदगी का मार्ग काला ।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

कीर्ति-स्तम्भ

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

महाराणा रायमल	: मेवाड़ के महाराणा ।
संग्रामसिंह	: महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र ।
पृथ्वीराज	: महाराणा रायमल का द्वितीय पुत्र ।
जयमल	: महाराणा रायमल का तृतीय पुत्र ।
सूरजमल	: महाराणा रायमल के बड़े भाई ऊदाजी का पुत्र ।
राजयोगी	: भवानी के मन्दिर का पुजारी ।
कर्मचन्द	: अजमेर का नगरसेठ ।

कुछ भील, कहार, कुछ सैनिक, द्वारपाल आदि ।

स्त्री-पात्र

शृंगारदेवी	: मेवाड़ की महारानी ।
तारा	: राव सूरतान की पुत्री, पृथ्वीराज की पत्नी ।
ज्वाला	: सूरजमल की छोटी बहन ।
यमुना	: दिल्ली की गणिका, जो जामूसी का कार्य करती है । दासी, सैनिकाएं आदि ।

पहला अंक

पहला दृश्य

(स्थान—चित्तौड़दुर्ग में महाराणा कुम्भा द्वारा बनवाया हुआ कीर्ति-स्तम्भ ।
समय—प्रभात । पर्दा उठने के पहले नेपथ्य से अनेक सैनिकों के सम्मिलित स्वर
में गान सुनाई देता है ।)

गान— भंडा ऊंचा रहे हमारा ।

इसका रंग केसरिया है,
दिनकर इसके मध्य उगा है,
मानो अभी प्रभात हुआ है ।
छाया प्राणों में उजियारा ।
भंडा ऊंचा रहे हमारा ।

लहर-लहर लहराने वाला,
उर में जोश जगाने वाला
करता रणमद में मतवाला,
वीरो को प्राणों से प्यारा ।
भंडा ऊंचा रहे हमारा ।

बाप्पा के वंशज बलिदानी,
एकलिंग के गण अभिमानी ।
कभी शत्रु से हार न मानी ।
यम को भी रण में ललकारा ।
भंडा ऊंचा रहे हमारा ।

(अन्तिम छन्द गाया जा रहा है कि पर्दा उठता है । कीर्ति-स्तम्भ
का केवल उतना भाग दिखाई देता है जितना रंगमंच की ऊंचाई
तक आ सकता है । कीर्ति-स्तम्भ पर हिन्दू देवी-देवताओं की कलापूर्ण

मूर्तियां अंकित दिखाई देती हैं। महाराणा रायमल एवं उनके नवयुवक पुत्र संग्रामसिंह तथा पृथ्वीराज एवं जयमल प्रवेश करते हैं। महाराणा रायमल मेवाड़ की राजसी पोशाक में हैं, मेवाड़ राज्य का विशेष राजचिह्न छगी धारण किये हुए एवं हाथ में दुधारा लिए हुए हैं। तीनों राजकुमार भी भव्य राजपूती साजसज्जा में हैं और तीनों ही अपने हाथों में तलवार लिए हुए हैं।)

रायमल—(उल्लसित होकर) मेवाड़ के वीर सैनिकों की गंभीर वाणी में मेवाड़-राज्य-पताका का यह यशगान सुनकर प्राण पुलकित हो उठते हैं।

संग्रामसिंह—हा पिताजी, सहस्रों प्राणों का सम्मिलित स्वर मेवाड़ी वीरों की एकता का परिचय दे रहा है। सागर की उत्ताल तरंगों के मुगम्भीर गान-सी इस स्वर-लहरी में प्रस्तुत प्राणों को जाग्रत कर देने की शक्ति है।

पृथ्वीराज—निश्चय ही, इस उन्मत्त कर देने वाले तुमुल निनाद को सुनकर मैं तो नशे में भूम उठता हूँ। जी चाहता है चट्टानों को भुजाओं में भरकर चूर कर डालूँ; तूफान से आंदोलित पारावार में तरणी छोड़कर प्रलयकारी लहरों पर झूला झूलूँ; आकाश के नक्षत्रों को तोड़ लाऊँ।

जयमल—मेवाड़ की राज-पताका के गौरव की रक्षा करने के लिए हम यम से भी लोहा लेने को प्रस्तुत हैं।

रायमल—मुझे अपने सुयोग्य, वीर सुपुत्रों पर अभिमान है। मेवाड़ की चिर-चंचल राजलक्ष्मी शताब्दियों से गहलोती के रक्त से अभिषिक्त हो रही है, किन्तु अभी उसकी रक्त-पिपासा शान्त नहीं हुई। (थोड़ी देर विचारमग्न रहकर) चित्तौड़ के प्रथम शाका की गाथा से तुम परिचित हो ?

संग्रामसिंह—ऐसा कौन अभाग मेवाड़ी होगा जो महासती वीरांगना पद्मिनी के जाज्वल्यमान जौहर की गाथा से अनुप्राणित नहीं होता ?

रायमल—महासती पद्मिनी के जौहर की ज्वाला मेवाडियों के प्राणों को चिरप्रज्वलित रखेगी, किन्तु मुझे तो आज महाराणा लाखा और उनके ग्यारह पुत्रों के वलिदान का अमर आख्यान याद आ रहा है। मेवाड की राजलक्ष्मी ने स्वप्न में महाराणा लाखा से कहा था—“मैं भूखी हूँ—मुझे राजबलि चाहिए—गहलोत राजवंश के बारह वीर पुरुषों का वलिदान चाहिए।”

संग्रामसिंह—हां पिताजी, महाराणा लाखा और महारानी ने नित्य एक-एक कर अपने ग्यारह पुत्रों को रणसज्जा में सजाकर, हृदय-रक्त से टीका कर, आरती उतारकर मुस्कराते हुए वीरगति पाने को रणभूमि में भेजा था और दिशाओं ने विस्मित होकर देखा था कि उनकी आंगवों में एक भी अश्रुविन्दु नहीं झलका।

रायमल—हां बेटा, तप्त मरुस्थल के समान उनके लोचन जलहीन थे। राजपूत को अपना हृदय पत्थर का बनाना पड़ता है।

जयमल—किन्तु, पिताजी, आपको अकस्मात् महाराणा लाखा के उस भयानक स्वप्न की याद क्यों आई ? क्या आपने भी...

रायमल—(वात काटकर) मैंने स्वप्न नहीं देखा। बेटा ! मैं तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आकाश से बातें करने वाला जो यह कीर्ति-स्तम्भ खड्ग से मेवाड की राजलक्ष्मी की मांग में अखंड मिदूर भरने वाले पूज्य पिताजी महाराणा कुम्भा ने खड़ा किया है, उसकी आधार-शिलाएं कांप रही हैं। जिस प्रकार घोर शीतकाल की रात्रि में निर्धन नग्न व्यक्ति की कृश काया थर-थर कापती है, उसी प्रकार आज कीर्ति-स्तम्भ की शिलाएं कांप उठी हैं।

पृथ्वीराज—शंकाशीलता कायरो का स्वभाव है ; पिताजी, आपको व्यर्थ विभ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।

रायमल—(रोषयुक्त मुद्रा में) बड़ी दया की तुमने जो अपने पिता को केवल कायर और 'विभ्रम में पड़ा' ही कहा—यह नहीं कहा कि मेरे मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो गया है, जिस प्रकार तुम्हारे ताऊ ऊदाजी ने स्वर्गीय

महाराणा कुम्भा के सम्बन्ध में कहा था और अपने पिता के मस्तिष्क का विकार दूर करने के लिए उनका मस्तिष्क ही काट डाला ।

पृथ्वीराज—क्षमा कीजिए पिताजी, आपने मेरा आशय नहीं समझा । कीर्ति-स्तम्भ की दृढ़ता पर अविश्वास करना सीसोदियो^१ के साहस और शौर्य पर संदेह करना है ।

रायमल—साहस और शौर्य तो सीसोदिया-रक्त के स्वाभाविक गुण हैं, किन्तु ये गुण दोधारी तलवार के समान हैं, जिनका असावधानी से प्रयोग करने से स्वयं आहत होने की संभावना रहती है । ये सद्गुण अवगुण बनकर आत्मनाश का कारण बन जाते हैं ।

संग्रामसिंह—बन क्या जाते हैं, बने हुए हैं । साहस और शौर्य अंधे हैं—उन्हें विवेक की आंखें चाहिए । शक्ति हृदयहीन है, उसे बलिदान-भावना में कोमल-हृदया बनाने की आवश्यकता है ।

रायमल—तुम ठीक कहते हो संग्रामसिंह, बाप्पा रावल के वंशजों को अभिमान, स्वार्थ, सत्ताप्राप्ति की तृष्णा, राज्यलिप्सा और भयानक दुर्गुणों ने ग्रस रखा है, तभी तो मैं कहता हूँ कीर्ति-स्तम्भ की शिलाएं काप उठी हैं ।

जयमल—जड़ कीर्ति-स्तम्भ भूकम्प के अतिरिक्त किसी और कारण से भी काप सकता है क्या पिताजी ?

रायमल—कीर्ति-स्तम्भ को जड़ कहकर तुम अपनी जड़ बुद्धि का परिचय दे रहे हो जयमल ! मैं तो इस कीर्ति-स्तम्भ के रूप में स्वर्गीय महाराणा कुम्भा को ही देख रहा हूँ, जो, जान पड़ता है, अपने सबल हाथों में मालवा के मुलतान और गुजरात के बादशाह की गर्दन थामे खड़े हैं, जिनपर विजय पाने के उपलक्ष्य में यह कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया गया है ।

१. मेवाड़ राजवंशी प्रारम्भ में गहलोत कहलाते रहे—बाद में सीसोदिया कहलाए । इस नाटक में दोनों ही नामों का प्रयोग किया गया है ।

संग्रामसिंह—निश्चय ही कीर्ति-स्तम्भ का प्राणवान् अस्तित्व सीसोदियाओं को युग-युग तक प्रेरणा प्रदान करेगा ।

रायमल—किन्तु, कीर्ति-स्तम्भ धायल हो गया है ।

पृथ्वीराज—घायल हो गया है ?

रायमल—हां पृथ्वीराज ! कीर्ति-स्तम्भ को मर्मन्तक आघात पहुंचा है । आज उसकी काया के साथ आत्मा भी धायल है । ऊदाजी ने अपने पिता वीर शिरोमणि महाराणा कुम्भा पर जो खड्ग-प्रहार किया था उसने कीर्ति-स्तम्भ को क्षत-विक्षत कर दिया है । मुकुट के मोह में पड़कर एक पुत्र ने, बाप्पा रावल के एक वंशज ने, पिता के प्राण ले लिए, इससे इस स्तम्भ की प्रत्येक शिला काप रही है ।

पृथ्वीराज—निश्चय ही ऊदाजी ने मनुष्यता को लज्जित करने वाला नृशंस कार्य किया है, किन्तु मैं पूछता हूं कि क्या उनका यह दुष्कर्म सर्वथा अस्वाभाविक है ? पिता जब मत्तामद में चूर रहकर बूढ़े होने पर भी अपने पुत्र के सबल हाथों में शक्ति और अधिकार नहीं सौंपते तब पुत्र की आकांक्षाएं पथभ्रष्ट हो जाएं तो उनमें अस्वाभाविक क्या है ? स्वर्गीय महाराणा कुम्भा ने महाविटप की भांति छाकर अपने आत्मीयजनों के विकास को रोक दिया । ऊदाजी का असन्तोष तो अवश्य ज्वालामुखी की भांति फट ही पड़ा, किन्तु पिताजी, आपको भी तो निर्वासित जीवन ही व्यतीत करना पड़ा । मैं तो कहूंगा, आप में पिता की अन्यायपूर्ण आज्ञा का सामना करने का साहस नहीं था ।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज, तुम्हारे प्राणों में यह विष किसने भर दिया ? पिताजी यदि ऊदाजी की भांति राज्यसिंहासन पर आसीन होने के लिए पिता पर खड्ग-प्रहार करते तो क्या संसार उसे वीरता कहता ? राजा बनने की अपेक्षा मनुष्य होना मानव के लिए अधिक गौरव की बात है । पृथ्वीराज ! प्राण लेने की वीरता से त्याग की वीरता महान् है ।

पृथ्वीराज—कायरता का दूसरा नाम त्याग है । राज्यलिप्सा, सत्ता की आकांक्षा, शासन करने की प्रबल इच्छा राजपूत की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । मैं

पूछता हूँ, क्या पिताजी ने राज्यलिप्सावश ही अपने अग्रज ऊदाजी से मेवाड़ का राज्य नहीं छीना ?

संग्रामसिंह—कदापि नहीं । हत्यारे को दंड देना एवं मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा करना आवश्यक था, केवल इसीलिए पिताजी को मेवाड़ के राज-मुकुट के लिए संघर्ष करना पड़ा अन्यथा वह एक बार सिंहासन पर लात मारकर चले ही गए थे ।

पृथ्वीराज—क्योंकि वह जानते थे कि बड़े भाई के रहते छोटे भाई का सिंहासन पर कोई अधिकार नहीं है । जो वस्तु उनकी नहीं थी उमी का त्याग किया था उन्होंने । हूँ—इसे आप त्याग कहते हैं ?

रायमल—पृथ्वीराज, तुम्हारी उद्दंडता पराकाष्ठा को पहुंच चुकी है । मेरे स्थान पर महाराणा कुम्भा होते तो इसी क्षण तुम्हें मेवाड़ की सीमा से निर्वासित कर देते ।

पृथ्वीराज—सत्य को प्रकट करने का पुरस्कार यदि मेवाड़ राज्य में निर्वासन के रूप में प्राप्त हो तो पृथ्वीराज उस अभिशाप को वरदान ही मानेगा—क्योंकि उसे नया राज्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त होगा ।

संग्रामसिंह—ऊदाजी की भांति तुम्हारे प्राण भी राज्यलिप्सा में व्याकुल है पृथ्वीराज !

पृथ्वीराज—जिनका पेट भरा हुआ है वे भूखों की व्याकुलता की हसी उड़ा सकते हैं । आज के मेवाड़ के युवराज एवं आगामी कल के महाराणा संग्रामसिंह जी ! मेवाड़ के वर्तमान परम प्रतिष्ठित राजवंश के संस्थापक अपने मामा के शव पर अपना राजसिंहासन रखकर एक आदर्श कायम कर गए हैं ।

रायमल—छिः पृथ्वीराज, तुम सत्ताप्राप्ति के मद में उन्मत्त हो गए हो । वीरवर बाप्पा रावल के शुभ उद्देश्य से किए गए आदर्श कार्य को अपने अंतर की कालिमा से कलंकित करने का यत्न मत करो । जहां देशहित का प्रश्न उपस्थित हो हमें सारे नाते, ममता, माया और मोह के ऊपर उठकर कार्य करना चाहिए । कृष्ण को अपने अत्याचारी मामा का वध करना पड़ा था । विदेशियों के हाथ देश की स्वाधीनता को रहन रखने का मंकल्प करने

वाले देशद्रोही मामा के भस्तक से राजमुकुट छीनकर विदेशी सत्ता की भारत में बढ़ती हुई बाढ़ को अपने पराक्रम से रोकने वाले बाप्पा रावल का भारतीय इतिहास चिर-ऋणी रहेगा । सदुद्देश्य के हित हमें अपनों से भी संग्राम करना पड़ जाता है । मैंने भी अपने अग्रज पितृहन्ता ऊदाजी से राजमुकुट छीनकर आदि पुरुष बाप्पा रावल की परम्परा का पालन किया है । ऊदाजी ने पिता की हत्या की, इस अपराध के लिए सम्भवतः मेवाड़ राजवंश उन्हें क्षमा भी कर देता, किन्तु मालवा और गुजरात की विदेशी राजसत्ताओं को मेवाड़ राज्य की भूमि देकर अपना सहायक, महायक क्या—स्वामी बनाना मेवाड़ का स्वाभिमान कैसे स्वीकार करता ! मेवाड़ की वीर प्रजा, सीसोदिया-शाखा के शूर वंशज, मेवाड़ की सम्मान-रक्षा में शताब्दियों से भस्तक चढाते रहने वाले सामंत आदि सबके एक स्वर आग्रह को रायमल कैसे टालता ? मेवाड़ राज्य का अस्तित्व जिनकी आंखों में शूल की भांति चुभता है...

(रायमल का वाक्य पूर्ण भी नहीं होने पाता कि सूरजमल प्रवेश करता है । सूरजमल भी तीनों राजकुमारों के सगान बहुमूल्य वेशभूषा में है एवं हाथ में तलवार लिए हुए है, किन्तु उसके वस्त्रों में लम्बी यात्रा के कारण कुछ मलिनता-सी आ गई है । आयु में वह संग्रामसिंह से बड़ा है, शरीर हृष्टपुष्ट एवं चेहरा तेजस्वी है ।)

सूरजमल—(महाराणा रायमल के चरण छूकर उनके अधूरे वाक्य में जोड़ता

हुआ) सीसोदिया आज उन्हीं के चरण चूमने में अपना गौरव मानते हैं ।

जयमल—(व्यंग करते हुए) क्या पितृहन्ता के पुत्र को इसका पश्चात्ताप है ?

सूरजमल—है क्यों नहीं ? क्या मेरे शरीर में गहलोत-रक्त प्रवाहित नहीं है;

क्या मैं भगवान् राम का वंशज नहीं हूँ ?

पृथ्वीराज—भगवान् राम के वंशज होते हुए भी तुम पितृहन्ता ऊदाजी के पुत्र हो । तुम्हारा मुह देखना भी पाप है ।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज, अभी तो तुम ऊदाजी के अपराध को स्वाभाविक कह रहे थे और अब...

पृथ्वीराज—और अब मैं उसका पुत्र होना भी अपराध कह रहा हूं। यही कहना चाहते हो न ? एक अभावग्रस्त व्यक्ति डाकू बन जाता है—यह स्वाभाविक है—किन्तु फिर भी उसके हिंसक कार्य अपराध ही हैं और उसके अपराधों का दण्ड समाज उसकी सन्तान को भी देता है।

सूरजमल—यदि सीसोदिया राजवंश ने विवेक की आंखें खो दी हैं तो उन्हें त्रिलोचन शंकर भी प्रकाश देने की क्षमता नहीं रखते। पिताजी ने जो किया उससे सम्पूर्ण शाखा लज्जित है, लेकिन पिता के अपराध का प्रायश्चित्त उसकी सन्तान करना चाहे तो उसका मार्ग अवरोद्ध कर देना, उसकी कर्तव्य-भावना को घृणा के प्रहार से आहत कर देना और उसे भी पाप पथ पर जाने को बाध्य करना क्या न्यायपूर्ण कार्य है ?

रायमल—पिता के पाप का प्रायश्चित्त तुम कैसे कर पाओगे सूरजमल ?

सूरजमल—बाप्पा रावल की राजगद्दी के गौरव की रक्षा में प्राणों की आहुति देकर काकाजी ! हत्यारे का बेटा होने के कारण ही तो मेरे अन्तःकरण से मानवता की सम्पूर्ण सद्प्रवृत्तियां समाप्त नहीं हो गई ?

संग्रामसिंह—पापी का पुत्र पुण्य के मार्ग पर अग्रसर होना चाहे तो समाज को उसका मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

जयमल—इसका अर्थ हुआ कि वेश्या की पुत्री को समाज में भद्रकुल की कन्या के समान विश्वास और आदर प्राप्त होना चाहिए।

संग्रामसिंह—अवश्य ! प्रत्येक व्यक्ति हमारे समाज का अंग है—समाज की शक्ति है। समाज के अंगों को हम काट-काटकर फेंकेंगे अथवा उन्हें गलने-सड़ने देंगे तो समाज दुर्बल होगा।

पृथ्वीराज—किन्तु दादा भाई, सांप का बेटा भी सांप होता है, यह प्रकृति का नियम है।

सूरजमल—इसी नियम के अनुसार सिंह का बेटा भी सिंह होना चाहिए—तब महाराणा कुम्भा के पुत्र ऊदाजी कैसे हुए ?

संग्रामसिंह—अच्छा-बुरा होना केवल वंश और माता-पिता के चरित्र पर निर्भर

नहीं होता, पूर्वजन्म के संस्कार और इस जन्म की परिस्थितियों और वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है ।

पृथ्वीराज—मैं केवल इस जन्म को मानता हूँ ।

संग्रामसिंह—इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व-नियन्ता अन्धा है । संसार में जो विषमता दृष्टिगोचर हो रही है—अर्थात् कोई निर्धन है, अभावों से पीड़ित है और कोई धनी है, सुखों के पालने में भूलता है, तो यह निष्कारण है ।

पृथ्वीराज—विषमता मनुष्यों के स्वार्थ की सृष्टि है । वैभव और सत्ता के धनी दीन, दुःखी और पीड़ितों के कष्टों और अभावों को पूर्वजन्म के कर्मों का फल कहकर अपने पापों को, अन्यायों को न्यायपूर्ण सिद्ध करने का यत्न करते हैं । यह संसार है दादा भाई, संघर्ष ही इसका जीवन है ।

सूरजमल—इस तर्क-वितर्क में मुझे अपनी बात कहने का भी अवसर नहीं मिलेगा क्या ?

रायमल—मेवाड़ में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने की स्वतन्त्रता है सूरजमल ! बोलो क्या कहना चाहते हो ?

सूरजमल—पिताजी पतन-पंक में इतने लिप्त हो गए हैं कि अब वह राम के वंशजों के मुख पर ऐसी कालिमा पोन देना चाहते हैं, जिसे विधाता भी न पोंछ पाएँ ।

पृथ्वीराज—जैसे अभी उन्होंने कुछ कसर छोड़ी है ।

जयमल—पिता की हत्या से भी अधिक कुत्सित कार्य वह क्या करना चाहते हैं ?

सूरजमल—पिता की हत्या से भी अधिक घृणित कार्य हो सकते हैं जयमल ! पिताजी ने दिल्ली के लोदी बादशाह से सहायता पाने के लिए अपनी पुत्री ज्वाला का, सिसोदिया-शाखा की एक राजकुमारी का विवाह उससे करना स्वीकार किया है ।

रायमल—अर्थात् अभी यह कुल को कलंकित करने वाला दुष्कृत्य हो नहीं पाया है ।

सूरजमल—नहीं, क्योंकि मैंने ज्वाला को दिल्ली में ही गुप्त स्थान पर छिपा दिया है, लेकिन दिल्लीपति की भुजाएं विशाल हैं । उसके गुप्तचरों के जाल में वह कभी भी फंस सकती है । अतः हमें शीघ्र ही कुल-गौरव की रक्षा का उपाय करना चाहिए ।

संग्रामसिंह—दिल्लीपति से लोहा लेने के अतिरिक्त और उपाय हो ही क्या सकता है ?

रायमल—सूर्य पश्चिम से भले ही उदित हो, किन्तु सीसोदिया राजवंश की कन्या भारत की स्वाधीनता के शत्रुओं के हाथ में नहीं जाने पाएगी ।

सूरजमल—जय हो महाराणा रायमल की जय ! सीसोदिया राजवंश की जय ! महाराणा के निश्चय ने मेरे प्राणों में नवजीवन संचारित कर दिया है ।

पृथ्वीराज—पितृहन्ता ऊदाजी का पुत्र सत्य बोल रहा है या हमें फंसाने की चाल चल रहा है, इस सम्बन्ध में मेरा मन दुविधा में है । फिर भी मैं प्रत्येक ऐसे प्रस्ताव का समर्थन करूंगा जिसमें लोहे से लोहा बजाने का अवसर प्राप्त हो ।

सूरजमल—तुम सम्भवतः अपने ऊपर भी विश्वास नहीं करते ?

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज विपत्ति का भी विश्वास करता है, काले नाग से भी खेल सकता है । समय इसका प्रमाण देगा ।

रायमल—बाप्पा रावल के वंशज कुलकीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए सर्वनाश के मुंह में कूदना अपना कर्तव्य समझते हैं । कुछ भी हो, ज्वाला का दिल्ली-पति से विवाह रोकना ही पड़ेगा । चलो, राजमहल में चलकर इस सम्बन्ध में योजना बनाई जाए ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—दिल्ली में यमुना-तट से कुछ दूर पथ । समय—सूर्योदय के पूर्व ब्राह्ममुहूर्त । पर्दे से ढकी हुई पालकी में, जिसे दो कहार ले जा रहे हैं, ज्वाला मंच के वाम पार्श्व से प्रवेश करती है । पालकी के साथ चार राज-पूत सैनिक हैं, किन्तु हैं साधारण व्यक्तियों की वेशभूषा में और इस प्रकार चल रहे हैं मानो पालकी से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है । जैसे ही पालकी का प्रवेश होता है, वैसे ही दूसरे पार्श्व से भिखारिन के रूप में यमुना प्रवेश करती है । वह कुष्ठ रोग से पीड़ित जान पड़ती है—उसके हाथों में रोग के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं । यमुना आकर इस प्रकार खड़ी होती है कि पालकी को ढोने वाले कहारों की गति रुक जाती है ।)

पहला कहार—हट सामने से, चुड़ैल ! रास्ते में ही आ धमकी ।

ज्वाला—(पालकी के अन्दर से, बिना मुंह निकाले) कौन है ?

यमुना—रानीजी का राज बना रहे, मुहाग अटल रहे, अपाहिज कोड़ी भिखारिन को कुछ मिल जाए ।

(पालकी के साथ साधारण वेश में चलने वाले सैनिक एक दृष्टि यमुना पर डालकर आगे बढ़ जाते हैं एवं दूसरे पार्श्व से प्रस्थान कर जाते हैं ।)

ज्वाला—दूर हट, बड़ा मुहाग अटल करने आई है ।

यमुना—रानीजी, जो मनुष्य पर दया करता है, उस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं । भगवान् के नाम पर कुछ दे दो माई । जिन्हें भगवान् ने दिया है उन्हें भगवान् की सन्तान दीन-दुःखियों को देना ही चाहिए ।

पहला कहार—तू हटती है या धक्के खाना चाहती है !

यमुना—दाता दे और भंडारी का पेट फटे । अरे भाई, मैं तो रानीजी से याचना कर रही हूँ ।

ज्वाला—तू बहुत ढीठ है री ।

यमुना—रानीजी, यह संसार भी तो बहुत ढीठ है—गरीबों की पुकार पर जरा

भी ध्यान नहीं देता । गरीबों की लाशों को कुचलती हुई अमीरों की पालकियां बढ़ती जाती हैं ।

दूसरा कहार—गरीब लोग भी तो खोपड़ी पर सवार होने का यत्न करते हैं ।

यमुना—ओहो, मेंढकी को भी चुकाम होने लगा । कैसे बोलता है, मानो दिल्ली का नगरसेठ है । धातु के दो टुकड़ों में धनवानों की पालकी उठाने वाला तू किस बिरते पर धनवानों का पक्ष लेता है ?

ज्वाला—(पालकी का थोड़ा-सा पर्दा उठाकर बाहर भांककर यमुना से) कौन है री तू ? (पालकी उठाने वालों से) जरा रुको ।

(कहार पालकी को भूमि पर रखते हैं ।)

यमुना—आप कौन है ?

ज्वाला—तुझे यह पूछने की आवश्यकता क्या है ?

यमुना—मैं आपकी तरह पालकी में मुह छिपाए तो बैठी नहीं हूँ जो आप मुझसे पूछती हैं, 'तू कौन है ?' मेरी रोगग्रस्त अपाहिज काया अपना परिचय दे तो रही है । निर्दय भगवान् ने जिसे कोढ़ी बना दिया है, समाज से जिसे केवल घृणा प्राप्त होती है, ऐसी पीड़ित नारी आप जैसी वैभव की पालकी में बैठने वालियों से दया की भीख मांगकर ही अपना जीवन चला सकती है ।

ज्वाला—सच कह, तू भिखारिन है नारी ?

यमुना—हे भगवान्, वैभव ने जिनके हिये की दया छीन ली है वे अभावग्रस्तों की दुर्दशा को भी धोखा समझते हैं । संसार में मनुष्यता है ही नहीं क्या ?

ज्वाला—भिखारिन तो तू बनी है किन्तु भिखारिन की भापा न सीख पाई ।

पहला कहार—बोलती तो ऐसे है, मानो कभी दिल्ली की पटरानी रही है ।

यमुना—(व्यंग्यपूर्वक कहार से) कैसी मीठी बात कह रहे हो राजा । पटरानी और भिखारिन सब माया के खेल हैं—स्वप्न में खेले जाने वाले नाटक हैं ! क्या पता, किसी जीवन में यह कोढ़ी भिखारिन किसी सम्राट् की सम्राज्ञी रही हो, किन्तु आज तो पथ पर भटकने वाली दुखिया नारी है । आज तो वह तुम्हारे जैसी पालकी उठाने वाले की पत्नी भी नहीं बन सकती ।

ज्वाला—तो तेरा इस कहार से ब्याह करा दूँ, बोल ?

यमुना—मेरा ब्याह तो यमराज से होगा ।

ज्वाला—मरकर भी तू रानी बनना चाहती है । चीथड़े पहनने पर भी तेरा आकांक्षाओं के पंख लगाकर उड़ने वाला हृदय अपना रूप छिपा नहीं पाया । तू कोई भी हो—आज संक्रांति का पर्व है—ब्राह्ममूहूर्त में तुने याचना की है, तुझे भीख अवश्य मिलेगी । बड़ा हाथ ।

(यमुना हाथ बढ़ाती है । ज्वाला पालकी में से हाथ निकाल फुर्ती से यमुना का हाथ पकड़ लेती है ।)

यमुना—क्या करती हो रानीजी ? कोढ़—छूत की बीमारी है ।

ज्वाला—हः हः, कोढ़ ! (पालकी से बाहर आती है ।) स्वर्ण के लिए जीवन बेचने वाली नारी, तू स्वयं समाज की छाती का कोढ़ है । किमलिए अपने मुकुमार शरीर को विकृत बनाती है, बोल ?

(यमुना हाथ छुड़ाना चाहती है । ज्वाला दूसरे हाथ से अपनी चोली से कटार निकालती है ।)

ज्वाला—छूटने का यत्न मत करो । मैं संक्रांति के पर्व पर यमुना में स्नान करने आई हूँ, तेरे रक्त से मुझे हाथ न रंगने पड़ें ।

यमुना—वाप रे, भयानक स्त्री है आप !

ज्वाला—भयानक बने बिना इस युग में नारी अपने सम्मान की रक्षा कर ही नहीं सकती ।

यमुना—आप ठीक कहती हैं रानीजी, स्त्री को आत्मरक्षा के लिये हिंसक बनना ही पड़ता है ।

(यमुना भी अपने दूसरे हाथ से वस्त्रों में से छुरी निकालती है— इसी समय एक सैनिक आकर यमुना का छुरी वाला हाथ पकड़ लेता है । यह सैनिक उन्हीं चार व्यक्तियों में से है जो पालकी के साथ आए थे, लेकिन आगे निकल गए थे ।)

सैनिक—किन्तु पुरुष के कठोर हाथों से छुटकारा पाना नारी के बस का नहीं है ।

(यह कहता हुआ सैनिक यमुना के हाथ से छुरी छीन लेता है ।)

ज्वाला—डरो नहीं यमुना ।

यमुना—क्या कहा ?

ज्वाला—दिल्लीपति के दरबार में मैंने तुम्हारा नृत्य देखा है—गाना सुना है । वेश बदलने पर भी तुम अपने स्वर के माधुर्य को छिपा न पाई । तुम्हारे पहले शब्द ने ही दिल्ली-दरबार की वह मदभरी महफिल आंखों के आगे घुमा दी । दिल्लीपति की गुप्तचर बनकर किसी कुमारी की जुही की कली-सी पवित्रता के पीछे तुम हाथ धोकर क्यों पड़ी हो ? निश्चय ही तुममें शक्ति है, किन्तु इस शक्ति का उपयोग करो, दुष्टों को काली नागिन बनकर डसने में ।

यमुना—आपको भ्रम हुआ है रानीजी ।

ज्वाला—ज्वाला भ्रम से बहुत दूर है । तुम जैसी गणिकाओं को स्वर्ण की चमक से अंधी बनाकर दिल्लीपति समझते हैं कि किसी भी नारी के जीवन से खिलवाड़ किया जा सकता है ।

(यमुना नीचे पड़ा हुआ पत्थर उठाकर फेंकना चाहती है, लेकिन सैनिक उसके हाथ का पत्थर छीन लेता है ।)

ज्वाला—पत्थर फेंककर किसे बुलाना चाहती हो यमुना ! यमुना के तट पर रक्त की नई यमुना बहाना चाहती हो ? अपना भला चाहती हो तो चुपचाप पालकी में बैठ जाओ । (यह कहते हुए कहार की तरफ देखती है ।)

(कहार अपने कंधे पर पड़े हुए अंगोछे से उसका मुंह बन्दकर उसे उठाकर पालकी में रख देता है ।)

सैनिक—राजकुमारीजी ! ऊदाजी आपके स्वभाव से परिचित हैं—जानते थे कि आप आज संक्रांति के पर्व पर यमुना-स्नान करने आएंगी और दिल्ली-पति की शक्ति को चुनौती देंगी । हमने समझ लिया था कि आज अवश्य वह आपकी खोज कराएंगे । यद्यपि हम अन्य पुण्यार्थियों से भी पहले आ गए हैं, तब भी खतरे से बाहर नहीं हैं ।

ज्वाला—(पालकी में बैठती हुई) चिन्ता नहीं, छिपे-छिपे जीवन बिताने से अच्छा है दुष्टों से दो हाथ करते हुए वीरगति पाना। आप लोगों के कहने से मैंने पालकी का सहारा लिया, नहीं तो मैं तो घोड़े पर सवार होकर आती। (कहारों से) बढ़ाओ पालकी।

(कहार पालकी बढ़ाते हैं। सबका प्रस्थान।)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रणभूमि। समय—लगभग सन्ध्या। नेपथ्य में घोड़ों के टापों की आवाज, हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, तलवारों की खनखनाहट तथा तुरही एवं नगाड़ों की ध्वनियां सुनाई देती हैं, किन्तु उनका स्वर दूर से आता हुआ जान पड़ता है। अतः इतनी जोर का नहीं है कि मंच पर वार्तालाप करने वाले पात्रों की आवाज को दबा दे। कभी-कभी कोलाहल का स्वर ऊंचा भी हो जाता है। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज हाथों में रक्तरंजित खड्ग लिए हुए आते हैं। उनके वस्त्रों पर भी कहीं-कहीं रक्त दिखाई देता है।)

संग्रामसिंह—ओह, आज प्रभात से हमारी तलवारों ने क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं लिया। संध्या का आगमन निकट है, अस्तंगत सूर्य की किरणों ने आकाश में लालिमा भरना प्रारम्भ कर दिया है और रणभूमि भी मानव-रक्त से पूर्णतः लाल हो चुकी है।

पृथ्वीराज—हां, आज रण का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया। प्राणों की तृप्ति प्राप्त हुई। सच तो यह है दादा भाई, कि जब शत्रु बलवान् होता है, युद्ध करने का वास्तविक स्वाद तभी आता है। हमारी सेना की अपेक्षा दिल्लीपति की सेना कई गुना है, फिर भी मेवाड़ी वीरों ने महारुद्र के गण बनकर शत्रुदल का संहार किया है।

संग्रामसिंह—और शत्रु के सैनिक साहस छोड़ रहे हैं।

पृथ्वीराज—अब हमें पूरे वेग से आक्रमण कर शत्रु का दिल्ली तक पीछा नहीं छोड़ना चाहिए ।

संग्रामसिंह—किन्तु भैया, ऐसा करना हमारी भूल होगी ।

पृथ्वीराज—क्यों दादा भाई ! क्या आपको मेवाड़ी वीरों की अजेय शक्ति पर विश्वास नहीं है ?

संग्रामसिंह—विश्वास है, अटूट विश्वास है । मेवाड़ी वीरों की वीरता की परीक्षा अनेक बार काल ने की है । आज हमें यम से भी लोहा लेने का जो उत्साह प्राप्त है वह कहां से आया ? पूर्वजों की यश-गाथाएं ही तो हमें अनुप्राणित करती हैं । पराक्रम की परम्पराएं हमें प्राणों का मोह त्यागने की प्रेरणा देती है, किन्तु भैया, निर्भयता और साहस के साथ धैर्य और दूरदर्शिता का मेल हो जाए तो हमारे राजपूत सैनिक संसार पर विजय पा सकते हैं । तुमने विश्व-विजय करने की आकांक्षा रखने वाले महान् यूनानी शूर सिकन्दर का दृष्टान्त पढ़ा है ? उसने मिश्र और पारस के विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्यों की सेनाओं को क्या केवल उन्मत्त उत्साह से पराजित कर दिया था ?

पृथ्वीराज—मिश्र एवं पारस देश के वासियों के सम्बन्ध में तो कुछ कहना कठिन है, किन्तु यह निर्विवाद है कि साहस और पराक्रम में भारतवासी यूनानियों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए थे ।

संग्रामसिंह—निश्चय ही, किन्तु भारत की धरती को रौंदती हुई यूनानी सेना आई और रौंदती हुई ही वापस यूनान पहुंच गई ।

पृथ्वीराज—किन्तु उसकी विश्व-विजय करने की लालसा वितस्ता की लहरों में विलीन हो गई ।

संग्रामसिंह—इसमें सिकन्दर की वीरता और रण-कौशल का अपराध नहीं है । मेरा विश्वास है कि यदि यूनानी सेना भारत में आगे बढ़ती तो मगध साम्राज्य की विशाल सेना भी उसकी गति को रोक नहीं पाती ।

पृथ्वीराज - भारतीय विक्रम पर ऐसा अविश्वास करने का कारण ?

संग्रामसिंह—मैं भारतीय विक्रम पर अविश्वास नहीं करता, किन्तु अपने

देशवासियों की आत्माघती दुर्बलताओं के प्रति आंखें मूंदकर भी नहीं रहना चाहता । जिस नंद की विशाल सेना का वृत्तान्त मात्र विश्वविजयी यूनानी सेना के साहस को समाप्त करने के लिए पर्याप्त था, उसे चन्द्रगुप्तमौर्य एवं चाणक्य के नवीन संगठन ने सरलता से पराजित कर दिया । इसे भी हमें नहीं भूलना चाहिए । यदि भारत के दुर्भाग्य से सिकन्दर की ललकार सुनकर उसके सैनिक आगे बढ़ते तो संभव था कि भारत पराधीनता की शृंखलाओं में तभी से बंध जाता ।

पृथ्वीराज—आपमें यही तो ऐव है दादा भाई, कि आप भूत और भविष्य के विचारों में निमग्न रहकर वर्तमान के स्वर्णअवसर को गंवा देते हैं । ‘मारवाड़ मनसूवे डूबा’ कहावत आप पर चरितार्थ होती है । दिल्ली के विदेशी शासन का तख्ता उलट देने का अवसर आ पहुँचा है । हमें शत्रु की एक पराजय से ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए । आंधी की तरह बढ़कर दिल्ली पर धावा बोलना उचित होगा ।

संग्रामसिंह—मैं तुम्हारे साहस की सराहना करता हूँ पृथ्वीराज ! तुम सिंह की माँद में घुसकर सोते हुए सिंह को जगाकर धरती पर रहकर सामने खड़े हो शिकार करते हो । मैं तुमसे कायर बनने को नहीं कहता, किन्तु राज्यों का संघर्ष बच्चों का खेल नहीं है; जरा-सी भूल से अनुचित आवेश में विवेक खो देने से, हम जीती हुई बाजी हार भी सकते हैं । हमें जीवन के उत्तु-दायित्व को समझना चाहिए । हमारा अस्तित्व रहे अथवा समाप्त हो जाए, यह बात महत्व की नहीं है, लेकिन अपने देश के भाग्य से खिलवाड़ करने का हमें अधिकार नहीं है ।

(सूरजमल का प्रवेश । वह भी हाथ में रक्तंजित तलवार लिए हुए है । उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ घाव दिखाई पड़ते हैं ।)

सूरजमल—भागा कायर, नहीं तो मीसोदिया-वंश के सम्मान से खेलने की दुरभिलाषा रखने वाले को सदा के लिए धरती पर मुला देता ।

संग्रामसिंह—कौन भाग गया, दादा भाई !

सूरजमल—वही कामी, कायर, मीमोदिया राजकुमारी से विवाह करने की

दुष्कामना करने वाला नीच, पापी ।

संग्रामसिंह—आप क्रोध में पागल हो रहे हैं । हमें शत्रु के लिए भी अपशब्द नहीं बोलना चाहिए ।

पृथ्वीराज—क्यों ? शत्रु को धिक्कारने का हमें पूर्ण अधिकार है ।

संग्रामसिंह—जो शस्त्र चलाने में निपुण हैं, वे अपशब्दों का प्रयोग कर अपने ओछेपन का परिचय क्यों दें ? पृथ्वीराज, शूरजन रणभूमि में करनी करके दिखाते हैं और दुर्बल एवं पामर प्राणी केवल कोसकर रह जाते हैं ।

सूरजमल—तुम मुझे पामर कहते हो संग्रामसिंह ! बहुत अभिमान है तुम्हें अपने बल-पौरुष पर, तो सम्हालो तलवार, परीक्षा हो जाए कि सूरजमल श्रेष्ठ है, या संग्रामसिंह । शत्रु से बाद में निपट लेंगे ।

संग्रामसिंह—यही तो दोष होता है राजपूतों में । वह क्षणिक आवेश में अपने लक्ष्य को भूल जाता है । संग्रामसिंह, सूरजमल को तो क्या, पितृहन्ता ऊदाजी को भी पामर नहीं कह सकता । इतना अवश्य है और मैं मानता हूं कि उन्होंने राज्यलिप्सा में सुधबुध खोकर एक महान् पातक कर डाला और पाप का प्रायश्चित्त करने की अपेक्षा पतन के पथ पर बढ़ते ही जाना श्रेष्ठ समझा है । पथभ्रष्ट ऊदाजी के सुपुत्र सूरजमल—मेरे आदरणीय दादा भाई—तुम्हें भी मैं सावधान करता हूं कि आवेश पर संयम करना • सीखो । मस्तिष्क की गरमी कहीं विचारों को विकृत न कर डाले और भूल से तुमसे भी कोई ऐसा कार्य न हो जाए जो कुल की कीर्ति को कलंकित करे ।

पृथ्वीराज—(सूरजमल से) दादा भाई, हमें परस्पर बल-विक्रम की होड़ लगाने का समय भविष्य में मिलेगा । इस समय तो समरभूमि में रणचंडी हमें पुकार रही है । वह कहती है, मैं प्यासी हूं, अभी बहुत प्यासी हूं । हमारा प्रथम कर्तव्य उसकी प्यास बुझाना है । दादा भाई, संग्रामसिंह तो मेवाड़ के भावी महाराणा हैं और वह भारत के भाग्य-विधाता बनने का स्वप्न भी देखते हैं, सो उन्हें स्वप्न देखने दो । हम तो वर्तमान को लेकर ही सन्तुष्ट हैं । रणमद में मत्त रहना ही हमारा जीवन है । सुनो, उधर

कोलाहल बढ़ रहा है। सम्भवतः वहां हमारी आवश्यकता है। यहां खड़े रहेंगे तो कदाचित् परस्पर ही तलवारें तानने लगेंगे।

संग्रामसिंह—यही तो मुसीबत है। राजपूत का तप्त रक्त रण चाहता है। शत्रु नहीं मिलेगा तो वह अपने स्नेहियों को ही शत्रु बनाकर उनसे लड़ेगा।

पृथ्वीराज—इसीलिए तो मैं कहता हूं, उसे सतत् युद्ध-यज्ञ में मस्तकों की आहुतियां देने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। शान्ति राजपूत-जीवन के लिए अभिशाप है।

संग्रामसिंह—राजपूत-स्वभाव से मैं अपरिचित नहीं हूं पृथ्वीराज! युद्ध के अवसर पर हमारे सामने उपस्थित होते ही रहेंगे। यह भारत का संक्रान्तिकाल है, विशेष रूप से मेवाड़ के भाग्य में एक क्षण के लिए भी शान्ति दुर्लभ है! तीन तरफ से गुजरात, मालवा और दिल्ली के साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा रखने वाले विदेशी सत्ताधीश उसे घेरे हुए हैं। आए दिन इनसे लोहा लेना ही पड़ता है। फिर भी मेवाड़ की कीर्ति अक्षुण्ण बनी हुई है। कभी किसी अलाउद्दीन ने अल्प समय के लिए मेवाड़ की ध्वजा को थोड़ा-सा झुका भले ही लिया हो, किन्तु पुनः कोई हमीर के समान महापराक्रमी वीर योद्धा सामने आया है और मेवाड़ की पताका को अभिमान के साथ उसने आकाश में लहरा दिया है।

सूरजमल—निश्चय ही मेवाड़ ने पराजित होना नहीं जाना। उसकी क्षणिक पराजय भी संसार के लिए ईर्ष्या करने योग्य नहीं है।

संग्रामसिंह—अवश्य ही, किन्तु यह सब होते हुए भी हमें मानना पड़ेगा कि हमारे वंश में बाप्पा रावल, हमीर, कुम्भाजी जैसे समर-शूरो के अवतरित होने पर भी हम भारत-भूमि की छाती पर से विदेशी शासन को समाप्त नहीं कर सके। जानते हो क्यों?

सूरजमल—क्यों?

संग्रामसिंह—क्योंकि हमारे यहां ऊदाजी जैसे व्यक्ति भी जन्म लेते रहे हैं।

देशद्रोह, स्वार्थ और कृतघ्नता ने हमारे राजनीतिक जीवन को कुत्सित कर डाला है ।

(पुरुष सैनिक वेश में ज्वाला का प्रवेश । वह भी रक्तरंजित असि धारण किए हुए है । वस्त्र एवं शरीर पर भी यत्र-तत्र रक्त के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्रदर्शित करते हैं कि आगन्तुक अभी रण में भाग लेता हुआ आ रहा है । ज्वाला के मुख पर सघन दाढ़ी-मूँछें हैं, फिर भी उसके शरीर की कोमलता स्पष्ट ज्ञात होती है । उसकी आंखों में मधुरता भी है और तेजस्विता भी ।)

ज्वाला—जो व्यक्ति अब संसार में नहीं है, उसकी निन्दा करना मेवाड़ के विवेकशील राजकुमारों को शोभा नहीं देता ।

सूरजमल—क्या कहा ? पिताजी अब संसार में नहीं हैं ?

ज्वाला—हां, मेवाड़ के महाराणा बनने का दुःस्वप्न देखने वाले, पिता की हत्या करने के पश्चात् पुत्री को विदेशी सत्ताधीश की अंकशायनी बनाने का नीच सकल्प करने वाले महाराणा ऊदाजी रणभूमि में अनन्त निद्रा में लीन है ।

(ज्वाला की आंखों में एक-दो बिन्दु आंसुओं के झलक आते हैं ।)

संग्रामसिंह—सैनिक, तुम्हारे नयनों के आकाश में सजल सावन क्यों घिर आया ?

पृथ्वीराज—जिस व्यक्ति का नाम लेना भी पाप है, उसकी मृत्यु पर तुम अश्रु ढालते हो राजपूत !

ज्वाला—रक्त का सम्बन्ध ऐसा ही है राजकुमार ! जो अपना है, वह चाहे कितना ही बुरा हो, उसके सदा के लिए विदा होने पर हृदय का रक्त आंसू बनकर बह जाना चाहता है ।

पृथ्वीराज—तुम्हारा ऊदाजी से क्या सम्बन्ध है ?

(ज्वाला अपनी नकली दाढ़ी-मूँछें दूर करती है ।)

ज्वाला—उन्होंने मुझे जन्म दिया था ।

सूरजमल—(ज्वाला को गले लगाते हुए) अरी तू है ज्वाला ! अद्भुत वेश बनाया है । सहोदर भी तुझे पहचान न पाया ।

(सूरजमल की आंखों से भी आंसू बह पड़ते हैं ।)

संग्रामसिंह—बहिन, तुम्हें अपने भाइयों के बल-विक्रम पर विश्वास नहीं था क्या, जो तुम अपनी कोमल काया को रणज्वाला में भोकने के लिए चली आई ?

(इस बीच सूरजमल और ज्वाला कुछ प्रकृतिस्थ होते हैं एवं आलिंगन से अलग होते हैं ।)

ज्वाला—मुझे अपने वीर भाइयों पर पूर्ण विश्वास है, तभी तो मैं दिल्ली में शत्रुओं के बीच सतत रहकर भी जीवित रह सकी । जहां शत्रु सहस्र हाथों से सतीत्व के कोमल सुमन को मसल डालना चाहता था, वहां मेवाड़ की राजकुमारी के रोम का भी स्पर्श कर सकना किसी विदेशी के लिए सम्भव हो नहीं सकता था । दादा भाई संग्रामसिंह, दुर्भाग्य से यदि ज्वाला शत्रु के पंजे में पड़ती तो निश्चय समझो क्षत्राणी अपनी लुरी से कामी के कलेजे का खून पीकर अपना भी बलिदान दे देती । दिल्लीपति से युद्ध करने में इतने मेवाड़ी मस्तकों को लुटवाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ।

संग्रामसिंह—यह तो ठीक है, किन्तु मेवाड़ का पुरुषार्थ ऐसी परिस्थिति को उचित नहीं समझता । बहिन, राम ने लका पर चढाई क्यों की थी ? क्या राम को सीता के सतीत्व-बल पर विश्वास न था ? क्या सीता अपने प्राणों की बलि देकर सहस्रों नरमुण्डों का बलिदान रोक नहीं सकती थी ? यदि वह ऐसा करती तो इसका अर्थ होता उसे राम के पुरुषार्थ पर विश्वास न था । वह जानती थी, भारतीय संस्कृति नारी के सतीत्व और सम्मान की रक्षा के लिए लाखों-करोड़ों नर-नाहरों की बलि देने को प्रस्तुत है । रावण द्वारा सीता का हरण भारतीय परम्परा, सम्यता और संस्कृति को चुनौती था ।

सूरजमल—और दिल्लीपति की मेवाड़ की राजकुमारी से विवाह करने की

दुरभिलाषा सम्पूर्ण राजपूत जाति का अपमान है और इसीलिए पुत्र ने बहिन के सम्मान की रक्षा के लिए पिता के विरुद्ध शस्त्र धारण किए।

ज्वाला—और इसीलिए बेटी भी अपने पिता के मरण का कारण बन गई।

संग्रामसिंह—किन्तु अब तुम्हें उसपर पश्चात्ताप नहीं करना चाहिए। कर्तव्य का पथ अनेक दुविधाओं से भरा हुआ रहता है। जो आदर्श पर दृढ़ हैं वे ममता, माया, नाते और सम्बन्धों को पांव की बेड़ियां नहीं बनने देते। एक दिन अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने स्वजनों और गुरुजनों को विपक्ष में खड़ा देखकर कहा था—हे कृष्ण, मैं इन्हें नहीं मारना चाहता, भले ही ये मुझे मार डालें। इस पृथ्वी के लिए तो क्या त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी मैं इन्हें नहीं मारना चाहता। कुल के क्षय होने से कुल की सनातन परम्पराएं नष्ट हो जाती हैं। धर्म के नाश होने से पाप का अधिकार हो जाता है।

सूरजमल—मेरी सम्मति में अर्जुन के कथन में सत्य था।

संग्रामसिंह—नहीं, मोहवश हम असत्य को सत्य समझ लेते हैं। कृष्ण ने गीता में देह को असत्य और आत्मा को सत्य बताते हुए संसार के सारे नाते भूटे सिद्ध किए हैं। समर-भूमि में कर्तव्य की प्रेरणा से युद्ध करते समय हमें इन सभी नातों से ऊपर उठना होगा।

सूरजमल—हम साधारण प्राणी माया-ममता से ऊपर उठ जाएं तो कृष्ण की भांति देवता ही बन जाएं। कुछ भी हो, रक्त का सम्बन्ध प्राणों में व्यथा का तूफान उठाता ही है। एक क्षण पहले मैं पिता पर घातक प्रहार करने में संकोच नहीं करता, किन्तु अब जब वह संसार में नहीं हैं, उनके साथ उनके पाप भी चले गए। अब हमें उनकी मिट्टी का सम्मान करना चाहिए।

संग्रामसिंह—अवश्य ! ऊदाजी की अन्त्येष्टि-क्रिया मेवाड़ के राजवंश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समान ही होनी चाहिए। उनके शव को प्राप्त करने के लिए हमें शत्रुदल की पूर्ण पराजय की प्रतीक्षा करनी होगी।

ज्वाला—शत्रुदल के पांव उखड़ चुके हैं, किन्तु हमें पिताजी का शव प्राप्त करने के लिए शत्रुसेना से रणभूमि के रिक्त होने की प्रतीक्षा करनी होगी, मैं

पिताजी के शव को अपने घोड़े पर लाद लाई हूँ । आओ मेरे साथ ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ दुर्ग के राजमहल में महाराणा रायमल की छोटी रानी शृंगारदेवी का शयन-कक्ष । कक्ष में महुमूल्य पर्यंक पर सुन्दर सेज बिछी हुई है । विश्राम करने के समय के उपयुक्त वस्त्रों में महाराणा रायमल पर्यंक पर विराजमान हैं । कक्ष के एक कोने में वीणा रखी हुई है, जो इस बात का प्रमाण है कि महारानी को संगीत से प्रेम है । कमरे की बिछात और सजावट विलासी भावनाओं को प्रदर्शित करने वाली है । शृंगारदेवी का प्रवेश । वह रूप-लावण्य की भंडार है एवं वस्त्रालंकार की मनोरमता ने उसे और भी अधिक आकर्षक बना रखा है । यौवन-काल पार कर लेने पर भी उसकी मोहकता में अंतर नहीं आया है । उसके हाथ में एक स्वर्ण-पात्र है, जिसमें कुसुम्बा भरा हुआ है ।)

शृंगारदेवी—(महाराणा के अधरों से पात्र लगाते हुए) अपने अमृत भरे अधरों से पात्र पी प्यास बुझाए । अपने हाथों से बनाकर लाई हूँ ।

रायमल—(सरस दृष्टि से शृंगारदेवी को देखते हुए) कुसुम्बा की क्या आवश्यकता है, शृंगारदेवी ! सुन्दरी नारी की सरस दृष्टि कुसुम्बा से भी अधिक मादक है । दृष्टि ही क्या तुम्हारा तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व अंगूरी शराब है ।

(रायमल कुसुम्बा का एक घूंट शृंगारदेवी के हाथों से पीकर पात्र अपने हाथ में ले लेते हैं ।)

शृंगारदेवी—ऐसा है तो महाराणाजी, मेरी काया को अफीम की भांति गुलाब-जल में धोल डालिए और इसका कुसुम्बा बना डालिए । मेवाड़ के सामन्तों

का कम से कम एक दिन का मनोरंजन तो हो ही जायगा और मुझे इस बात की तृप्ति होगी कि मेरी काया महाराणाजी को वास्तविक रूप में प्रसन्न कर सकी ।

रायमल—(कुसुम्बा का घूंट पीते हुए) किन्तु शृंगारदेवी केवल मेवाड़ के महाराणा के लिए है ।

शृंगारदेवी—किन्तु मेवाड़ के महाराणा पर शृंगारदेवी का एकाधिपत्य तो है नहीं । शृंगारदेवी की अपेक्षा मेवाड़ के सामन्तों का महाराणाजी पर अधिक अधिकार है । शृंगारदेवी क्या है ? महाराणाजी की छोटी रानी मात्र । पटरानी तो भालारानी है और उनके पुत्र संग्रामहिंस और पृथ्वीराज मेवाड़ के महाराणा एवं मेवाड़ वासियों की आखों के तारे हैं । शृंगारदेवी का पुत्र जयमल तो सबकी उपेक्षा का पात्र है ।

रायमल—(कुसुम्बा का पात्र पास रखी एक चौकी पर रखते हुए) तुम बहुत सुन्दर हो, जैसे सर्पिणी, और उसकी भांति जहरीली भी ।

शृंगारदेवी—(महाराणा के अति समीप बैठते हुए) तो सर्पिणी को महाराणाजी कभी-कभी गले का हार क्यों बना लेते हैं ?

रायमल—शंकर के गले में सर्पों का होना स्वाभाविक है ।

शृंगारदेवी—तो आप शंकर की भांति अनुरागविहीन हैं ?

रायमल—अनुरागविहीन कौन हो सकता है ! कौन कहता है कि शंकर अनुरागविहीन थे । सती की लाश को उठाए हुए उन्मत्त होकर तीनों लोकों में घूमने वाले शंकर को वीतराग कहना असत्य की पराकाष्ठा है । सच बात तो यह है कि नारी पुरुष की निर्बलता है । उसकी सम्पूर्ण दृढ़ता नारी के चरणों में पानी होकर बह जाती है । आदर्श-प्रियता, वीरता और विवेक, तप और संयम नारी के एक संकेत पर सुधि भूल जाते हैं । विश्वामित्र जैसे कठोर दृढ़व्रती तपस्वी मेनका के मादक संकेतों से उन्मत्त हो गए थे । नारी पुरुषों से क्या नहीं करा सकती ?

शृंगारदेवी—(महाराणा के पास से उठकर कुसुम्बा का पात्र उठाती हुई) किन्तु महाराणाजी, होश में रहने के लिए नारी के हाथ का दिया हुआ कुसुम्बा

भी नहीं पीना चाहते ? लीजिए, पीजिए ।

(शृंगारदेवी पात्र महाराणा रायमल को देती है—महाराणा मुस्कराते हुए एक घूंट पी लेते हैं और फिर पात्र को चौकी पर रखकर खड़े हो जाते हैं और कक्ष में दो-चार कदम इधर-उधर रखते हैं ।)

रायमल—उस दिन, आज से बाईस वर्ष पहले, जोधपुर की राजवाटिका में जोधाजी राठौर की कुमारी की रूप-सुरा का रायमल की आंखों ने जो चोरी-चोरी रसपान किया था, तब से क्या एक क्षण के लिए भी उसे होश आया है ? पता नहीं वह प्रकृति की कृपा थी अथवा मुझे अपना बन्दी बनाए रखने के लिए जोधाजी का षड्यन्त्र । कुछ भी हो, परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ का मारवाड़ पर बन्धन ढीला पड़ गया ।

शृंगारदेवी—अर्थात् मारवाड़ की राजकुमारी और मेवाड़ के राजकुमार का ग्रन्थि-बन्धन दोनों राज्यों के स्नेह-बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने वाला हुआ ?

रायमल—मारवाड़ सदा ही मेवाड़ की आज्ञा का अनुरागी रहा है, किन्तु तुम्हारा मुकुपर राज्य होने के कारण उसे अपनी सत्ता को स्वतन्त्र समझने की हिम्मत होने लगी है । किन्तु छोड़ो इस नीरस प्रसंग को । प्रीति का मनोहर संगीत राजनीति के नीरस नाद में क्यों परिणत हो ?

शृंगारदेवी—किन्तु, यही तो स्वाभाविक है महाराणाजी ! राजपूत के जीवन में प्रीति तो मरुस्थल में कहीं-कहीं दिखाई देने वाले थोड़े-से छोटे-छोटे हरियाले स्थानों की भांति कभी-कभी दिखाई पड़ जाती है । अन्यथा उसका सम्पूर्ण जीवन राजकाज के प्रज्वलित बालू के मैदान में से ही गुजरता है ।

रायमल—किन्तु महारानीजी, सावन के अन्धे को हरा ही हरा दिखाई देता है । तुम्हारा रूप मेरे जीवन का सावन है, जिसमें मेरे विवेक की आंखें ज्योति खो बैठी हैं । मुझे सिवा तुम्हारे रूप के कुछ दिखाई नहीं देता । शृंगारदेवी की इच्छा आज मेवाड़ की राजनीति है ।

शृंगारदेवी—(दीर्घ निश्वास लेकर) ओह, कहीं यह बात सत्य होती ?

रायमल—(दीर्घ निश्वास लेकर) कहीं यह बात असत्य होती तो आज रायमल संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के अनाड़ी हाथों में मेवाड़ की सेना का संचालन न छोड़ता । आज दिल्लीपति की सेना से लोहा लेने के लिए मेवाड़ का महाराणा सबसे आगे दिखाई देता ।

शृंगारदेवी—आपको इसका पश्चात्ताप क्यों होना चाहिए । जब आपके पुत्रों के हाथों में युद्धभूमि में तलवार का जौहर दिखाने का पर्याप्त बल-कौशल आ चुका है, तब चिरकाल से समर-भूमि में पराक्रम दिखाने वाली भुजाओं को विश्राम क्यों नहीं करना चाहिए ?

रायमल—अर्थात् उन्हें नारी के मस्तक का कोमल सिरहाना बनकर पड़े रहना चाहिए ? महारानी, तुम्हारे मुह से विश्राम की बात शोभा नहीं देती, क्योंकि तुम क्षत्रिय बाला हो । मेवाड़ का महाराणा यद्यपि राम, लक्ष्मण और भरत के समान सुयोग्य युवा पुत्रों का पिता है, किन्तु उसे विश्राम का नाम लेने का अधिकार नहीं है ।

शृंगारदेवी—महाराजा दशरथ ने भी राम को राजकाज सौंपकर विश्राम करना चाहा था !

रायमल—ठीक है, किन्तु उस समय के अयोध्या के राज्य और मेवाड़ के वर्तमान राज्य में बहुत अन्तर है । ऊदाजी की जलाई हुई ज्वाला मेवाड़ के गौरव को भस्मसात् करने के लिए अपनी सहस्रों जिह्वाएं लपलपा रही है । मेवाड़ के गौरव को निगलने के लिए दसों दिशाओं से अगणित अजगर मुंह फैला रहे हैं । और ओ जादूगरनी नारी ! तू मुझे कर्तव्य-पथ से विचलित करना चाहती है ! हट जा मेरे सामने से !

शृंगारदेवी—(साश्चर्य महाराणा रायमल की ओर देखकर) महाराणाजी, सहसा क्या हो गया आपको ! अभी तो आप कहते थे, शृंगारदेवी की इच्छा ही मेवाड़ की राजनीति है ।

रायमल—(शान्त स्वर में) हां, यही तो महाराणा की बेबसी है । तुमने मुझे अपने आकर्षण के कारागार में बन्द कर रखा है । मैं बंदी पंछी की तरह

तड़पता हूँ; सीखचों पर चोंचे मारता हूँ; किन्तु मुक्ति नहीं पा सकता ।
तुम नित्य नये प्याले पिलाकर मेरी रसिकता को यौवन देती हो और
राजपूती को जीर्णता ।

शृंगारदेवी—महाराणाजी, (महाराणा के सामने जाकर अपने हाथ से उनके
मुख को अपनी ओर करके) इधर देखो, मुझे समझो । मैं भी राठौरों की
पुत्री हूँ, जिन हाथों से महाराणाजी के लिए कुसुम्बा बनाती हूँ, उनमें शस्त्र
पकड़ने की क्षमता भी रखती हूँ । मेरा दुर्भाग्य है कि महाराणाजी ने मेरे
शरीर में, मेरे प्राणों में बसने वाले क्षत्रिय तेज को देखा ही नहीं । कभी
उसे उत्तेजित ही नहीं किया । आपने देखा केवल दुग्धधवल चर्म, आपने
देखी केवल मेरी लालसा से भरी हुई आंखें; नहीं देखा वह दुर्दमनीय साहस
जो राजपूतनी के जीवन की सांस है; नहीं देखी वह ज्वाला जो त्रिलोचन
के तीसरे नेत्र के महानल को भी सहमा दे ।

रायमल—सचमुच तुम भयानक नारी हो शृंगारदेवी !

शृंगारदेवी—महाराणाजी, आप मेरी स्तुति कर रहे हैं अथवा निन्दा !

रायमल—क्या तुम समझ नहीं सकती ?

शृंगारदेवी—नहीं तो; और यह भी नहीं समझ सकी कि महाराणा चाहते क्या
है, मेरा कौन-सा रूप मेरे देवता को प्रिय है ।

रायमल—चांदनी रात में भरने वाले भरने-सा फेनोज्वल तुम्हारा यौवन,
बादलों में चमकने वाली बिजली-सा जगमगाता हुआ सौंदर्य, रणभूमि में
चमकने वाली तलवार की धार-सी तुम्हारी चितवन । (शृंगारदेवी की
भुजाओं को पकड़कर हिलाते हुए) यह सांप के निचले अंग की भांति
चमकदार, चिकनी, गोल-गोल भुजाएं । भुजगिनी, मुझे तू उसी रूप में
सुहाती है ।

(रायमल शृंगारदेवी की भुजाओं को छोड़कर कुसुम्बा का पात्र
उठाकर पीने के लिए मुंह तक लाते हैं, किन्तु शृंगारदेवी उन्हें
रोकती है ।)

शृंगारदेवी—बस महाराणा । सम्भवतः आज कुसुम्बा कुछ गहरा हो गया है ।

रायमल—(शृंगारदेवी के रोकने पर भी शेष कुसुम्बा पीकर पात्र को फेंक देते हैं ।) रायमल ऐसे वीरियों पात्र एक ही समय में पी सकता है और तुम्हारे ज़हरीले हाथों के दिए हुए पात्रों से तो वह युग-युग तक पीने के लिए लालायित रहेगा ।

शृंगारदेवी—पी लेना सरल है, पीकर होश में रहना कठिन ।

रायमल—जो होश में रहता है, वह पीता ही नहीं । होश क्या है, इसे जानने के लिए भी कभी-कभी बेहोश होना आवश्यक है । होश में रहने के लिए कौन पीता है ? नशा तो बेहोश होने के लिए ही किया जाता है । सच पूछो तो बेहोशी में जो बात कही जाती है वही वास्तविकता के निकट होती है । होश में तो मनुष्य जो बात करता है उसमें कृत्रिमता अधिक होती है ।

शृंगारदेवी—किन्तु विचारों का तारतम्य स्थिर रखने के लिए होश में रहना आवश्यक है ।

रायमल—तारतम्य स्वयं एक कृत्रिमता है । तुमने अरावली की पर्वतमाला को देखा है, कैसी ऊंची-नीची है वे । कहीं खण्ड है, कहीं ऊंचे शिखर, कहीं सघन वन, तो कहीं सपाट चौगान; कितनी विषमता है उनमें, और किसी प्रकार का नियम और तारतम्य नहीं है । जीवन ऐसा ही होना चाहिए । रणभूमि और सुमन-सेज दोनों ही जीवन के दो यथार्थ पहलू हैं ।

शृंगारदेवी—आप ठीक कहते हैं महाराणाजी, उत्तेजित घड़ियों में रणभूमि में शौर्य दिखाना पर्वत के शिखर पर चढ़ने के समान है और मादक घड़ियों में कोमल हाथों से प्रीति-सुरा का पान करना मानो खड्ड में नीचे उतरना है । सौंदर्यप्रेमी आंखों को ऊंचाई और गहराई दोनों ही सुन्दर जान पड़ती है । महाराणाजी को जीवन के किसी भी पहलू को हीन नहीं समझना चाहिए ।

(शृंगारदेवी हाथ पकड़कर रायमल को पर्यंक पर बैठा देती है ; फिर बीणा उठाकर लाती है और महाराणा के पास बैठकर बजाना प्रारम्भ करती है ।)

शृंगारदेवी—आप विश्राम कीजिए, मैं वीणा बजाती हूँ। आपके उत्तेजित मस्तिष्क को संगीत की शीतल धारा प्रलेपन की भांति शान्त करेगी।

(शृंगारदेवी वीणा बजाने में तन्मय हो जाती है—महाराणा रायमल लेटकर वीणा-वादन का आनन्द लेने का यत्न करते हैं। इसी समय नेपथ्य में नगाड़ों और भेरियों की आवाजें होती हैं। महाराणा सहसा उठकर खड़े हो जाते हैं एवं बाहर जाने लगते हैं। शृंगारदेवी वीणा को पटककर महाराणा की तरफ बढ़ती है।)

रायमल—(जाते-जाते) मेवाड की जय-पताका फहराते हुए मेरे वीर पुत्र लौट आए हैं, मैं उनका स्वागत करूँगा।

(प्रस्थान)

शृंगारदेवी—किन्तु महाराणाजी, क्या आप अकेले ही अपने विजयी पुत्रों का स्वागत करेंगे ? मैं भी आपके पुत्रों की, नहीं-नहीं अपने पुत्रों की, आरती उतारूँगी। कितना अच्छा होता, आज संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के साथ जयमल भी होता तो शत्रुाणी मां का हृदय फूला न समाता।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पांचवां दृश्य

(स्थान—शिलाखंडों से परिपूर्ण सरिता तट। समय—रात्रि का द्वितीय प्रहर। चांदनी रात। कुमारी तारा एक शिला पर बंठी हुई गीत गा रही है। सरिता की धारा कुछ दूर है, अतः दर्शकों की दृष्टि से ओझल है। उस स्थान के शिला-खंडों से ही अनुमान होता है कि निकट ही सरिता है। तारा को तारुण्य एवं सौंदर्य की अनुपम निधि प्रकृति ने उदारतापूर्वक प्रदान किया है। राजपूत बाला के उपयुक्त लम्बा कद, गौर वर्ण, मुख-मण्डल पर मधुर कांति और सुदीर्घ नयनों में मोहकता के साथ तेजस्विता दिखाई देती है। वह शिलाखंड पर बंठकर

गाती हुई ऐसी जान पड़ती है मानो कोई अप्सरा किसी तपस्वी का तप भंग करने के लिए अपनी स्वर-लहरी के शर छोड़ रही है। किन्तु उसके सौन्दर्य और स्वरूप के विरुद्ध उसकी कमर में तलवार भी बंधी हुई है।)

तारा—(गीत)

रहा है हृदय यह अकेला-अकेला ।
 किसी ने नहीं प्रीति का खेल खेला ।
 रहा है कुटी में सदा ही अन्धेरा ।
 सतत शून्यता का रहा, हाय घेरा ।
 जगत में न कोई बना मित्र मेरा ।
 किसी की हंसी ने किया कब उजेला ?
 रहा है हृदय यह अकेला-अकेला ।
 किसीने नहीं प्रीति का खेल खेला ।
 प्रतीक्षा किसी की विकल कर रही है ।
 हृदय में विपुल वेदना भर रही है ।
 विकल लोचनों को सजल कर रही है ।
 वियोगी हृदय ने कठिन ताप भेला ।
 रहा है हृदय यह अकेला-अकेला ।
 किसी ने नहीं प्रीति का खेल खेला ।
 न जाने किसीने किधर से पुकारा ।
 किसीने किया है कहीं से इशारा ।
 उगा है नया ही कहीं एक तारा ।
 अरे आ गई क्या मिलन की सुबेला ?
 रहा है हृदय यह अकेला-अकेला ।
 किसीने नहीं प्रीति का खेल खेला ।

(तारा जिस समय 'प्रतीक्षा किसी की विकल कर रही है,' पंक्ति गा रही है। उसी समय पृथ्वीराज पीछे से प्रवेश करता है और गीत पर

मुग्ध होकर चुपचाप खड़ा रहता है। तारा का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता और वह तन्मय होकर गाती रहती है।)

पृथ्वीराज—(जब तारा का गीत समाप्त होता है) अद्भुत ! अपूर्व ! ! मृदुतम ! ! ! स्वर्ग की अप्सरा ने धरती पर अवतार लिया है।

(तारा खड़ी होती है। मुड़कर पृथ्वीराज की तरफ देखती है और म्यान से तलवार निकालती है।)

तारा—दुष्ट, तू कौन है ?

पृथ्वीराज—कमल से भी कोमल हाथों में यह संहार का निष्ठुर शस्त्र क्यों पकड़ती हो बाले ! दुष्ट पुरुष की शालीनता पर अविश्वास मत करो। मैं राजपूत हूँ, तुम भी राजपूत वाला जान पड़ती हो। राजपूत बाला किसी भी कारण से किसी पुरुष से सहसा भयभीत नहीं होती।

तारा—निश्चय ही, राजपूतनी कभी भयभीत नहीं होती, किन्तु पुरुष की लम्पटता से रक्षा करने के लिए तत्पर होने को भयभीत होना नहीं कहते, अजनबी राजपूत !

पृथ्वीराज—अजनबी राजपूत को बिना जाने-बूझे लम्पट कह देना अनुचित है। यह ठीक है कि एकान्त में इस सरिता के तट पर एकाकी तरुणी के निकट किसी तरुण का इस प्रकार आ जाना असमंजस में डालने वाला है। किन्तु इसमें इस अजनबी राजपूत का कोई अपराध नहीं। तुम जानती हो, नारी के मधुर स्वर में कितना आकर्षण होता है ; मनुष्य तो क्या जंगल के हिरन भी संगीत को सुनकर खिंचे चले आते हैं।

तारा—किन्तु मनुष्य मृग की भांति अबोध नहीं होता और नारी के प्रति उसकी भावना निर्दोष नहीं रह पाती। तुम्हारा यहां इस प्रकार आना निश्चय ही अपराध है और मुझे किसी पुरुष का ऐसा दुस्साहस सह्य नहीं हो सकता। मैं तुम्हें दण्ड दूंगी।

पृथ्वीराज—बहुत विश्वास है तुम्हें अपनी तलवार का ! हो सकता है तुमने शस्त्र-साधना में प्रवीणता प्राप्त की हो, किन्तु फिर भी तुम नारी हो।

मेवाड़ के राजकुमार पृथ्वीराज की तलवार से टकराकर तुम्हारी तलवार टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी ।

तारा—(सादृश्य) आप मेवाड़ के राजकुमार पृथ्वीराज हैं, जिनके दुर्दमनीय साहस की कहानियां मेवाड़ के घर-घर में चर्चा का विषय बन रही हैं !

पृथ्वीराज—हां, वही कुर्यात पृथ्वीराज तुम्हारे सामने नतमस्तक खड़ा है । जिसकी भुजाओं को एक क्षण विश्राम करना सह्य नहीं है, जो अभी-अभी दिल्लीपति की विशाल वाहिनी का मदमर्दन कर आया है । किन्तु फिर किसी नई विपत्ति की तलाश में है और राजमहल में मन न लगने से वन के हिसक पशुओं का आखेट करता हुआ यहां आ पहुंचा है । किन्तु, बाले, तुम कौन हो ? क्यों इस निर्जन सरिता-तट पर विरह की रागिनी छेड़ रही हो ? तुम्हें जरा भी भय नहीं कि सरिता-तट पर रात के समय सिंह जैसे हिसक प्राणी पानी पीने आते हैं और सिंह से भी भयानक पुरुष भी कभी-कभी आ पहुंचते हैं ?

तारा—राजकुमार, तुम्हारी तरह इस राजपूत बाला को भी विपत्तियों को आमन्त्रित करने में आनन्द आता है । संकट मेरा चिर सहचर है । तुम मेवाड़ के राजकुमार हो, हिन्दुओं के सूर्य कहाने वाले महाराणा के पुत्र, किन्तु मैं भी कहने के लिए राजकुमारी हूं । एक छोटे-से राज्य के अधिपति की पुत्री हूं ।

पृथ्वीराज—किस राज्य के अधिपति की ?

तारा—टोड़ा दुर्ग के स्वामी राव सूरतान को आप जानते हो ?

पृथ्वीराज—उनके दर्शन पाने का अवसर तो नहीं मिला, किन्तु नाम सुना है ; यह भी सुना है कि लालपठान ने उनसे टोड़ादुर्ग छीन लिया है ।

तारा—हां राजकुमार ! आपने ठीक ही सुना है । अब हम इस वनप्रदेश में रहकर अपनी बपौती को पुनः प्राप्त करने के लिए साधना कर रहे हैं । पिताजी को इस बात का खेद है कि उनके कोई पुत्र नहीं है,

जो इस संघर्ष में उनसे कंधे-से-कंधा मिलाकर शत्रु से लोहा लेने में साथ देता । इसीलिए उनकी पुत्री तारा ने शस्त्रों की साधना की है; घोड़े की पीठ पर बैठकर दुर्गम स्थानों की इसने सैर की है, धनुर्विद्या का अभ्यास किया है ।

पृथ्वीराज—सुना है, तुम्हारे मोहक रूप की ख्याति ही लालपठान को टोड़ा दुर्ग में खींच लाई । उसके प्रस्ताव की अवहेलना ही राव सूरतान की सारी विपत्तियों का कारण है ।

तारा—हां राजकुमार ! रानी का सौन्दर्य कभी-कभी स्वजनों के लिए अभि-शाप बन जाता है । मेवाड़ का इतिहास भी तो इसका साक्षी है । पद्मिनी ने चित्तौड़ का साका करवाया, उसी प्रकार आज यह तारा अपने पिता के संकट का कारण बनी हुई है ; किन्तु आप निश्चय जानिए, मैं एक दिन उस लंपट लालपठान से अपना दुर्ग छीनकर ही रहूंगी और उसकी छाती अपनी छुरी से विदीर्ण करूंगी ।

पृथ्वीराज—तुम्हारे प्रण और साहस की मैं प्रशंसा करता हूं । मनुष्य में संकल्प की दृढ़ता और साहस हो तो साधनों की कमी उसके मार्ग की बाधा नहीं बन सकती । निश्चय ही तुम्हारा संकल्प पूरा होगा । किन्तु तुम नारी हो, बिना पुरुष से सहयोग के वैरी से प्रतिशोध न ले सकोगी । प्रकृति ने आज अचानक, अनायास दो प्राणियों को इस निर्जन स्थान पर एक-दूसरे के सामने खड़ा कर दिया है । हमारे मिलन पर आकाश में चांद मुस्करा रहा है, सरिता गीत गा रही है । लाओ अपनी यह तलवार वाला हाथ, मेरे हाथ में दो ।

(तारा का हाथ पकड़ लेता है । तारा गर्दन नीचे झुकाती है ।)

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज के भयंकर बाढ़ के समान तटहीन जीवन को मानो किनारा मिल गया । कितनी ही सुकुमारियां रूप और यौवन की मादक प्यालियां लेकर इसे बेहोश करने आईं ; किन्तु विफल रहीं । बाढ़ को किसने बाहुओं में बांधा है । किन्तु तुम धरती के समान विशाल हो, तुम्हारा छोर मैं नहीं पा सकता । पृथ्वीराज के जीवन में नारी को कोई स्थान आज तक प्राप्त

नहीं हुआ। वह तो रात्रि में भी अपनी तलवार को ही वक्ष से लगाकर सोता रहा है। किन्तु ग्राज प्रथम बार उसने जाना कि नारी के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है।

(तारा पृथ्वीराज के हाथ से अपना हाथ अलग कर लेती है। पृथ्वी-राज विस्मय से तारा को देखता है।)

तारा—राजकुमार, वीर, साहसी और सत् पुरुष का अपमान करना मैं पाप समझती हूं, फिर भी मुझे कहना पड़ता है कि हमारा यह आकस्मिक मिलन नदी-नाव संयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं। हमारे मिलन-मार्ग में अभी लालपठान का अस्तित्व चट्टान की तरह अड़ा हुआ है।

पृथ्वीराज—उस चट्टान को पृथ्वीराज चकनाचूर कर देगा।

तारा—किन्तु जिस मस्तक में तारा को प्राप्त करने का कुविचार हुआ था उसे तारा अपनी तलवार से काटना चाहती है।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज उसे बांधकर अपनी प्रियतमा के चरणों में डाल देगा। तुम्हारा जी चाहे तो उसकी अपवित्र काया के टुकड़े-टुकड़े कर डालना।

तारा—तारा राजपूत बाला है, कसाई नहीं। पराजित और असहाय शत्रु पर वह प्रहार नहीं करेगी। युद्धभूमि में उससे लोहा लेगी। सिंहवाहिनी चंडी के समान रिपुदल का संहार करेगी। वह विजय-दुंदभी बजाती हुई टोड़ा-दुर्ग में प्रवेश करेगी और पिताजी की इस व्यथा को दूर करेगी कि वह पुत्रहीन हैं।

पृथ्वीराज—धन्य हो तारे, तुम सचमुच ही दुर्गा हो। तुम्हारे इस विकट अनुष्ठान में पृथ्वीराज तुम्हारा अनुचर बनकर साथ देगा। संसार की कोई शक्ति अब लालपठान की रक्षा नहीं कर सकती।

तारा—मुझे विश्वास है राजकुमार, हमारी साधना सफल होगी, किन्तु कार्य सरल नहीं है। टोड़ादुर्ग छोटा होते हुए भी सुदृढ़ और दुर्गम है। लालपठान के पास सुशिक्षित एवं सुसंचालित सेना है। मालवा और गुजरात के सुलतान उसके सहायक हैं।

पृथ्वीराज—किन्तु मेवाड़ की शक्ति...

तारा—(पृथ्वीराज को वाक्य पूरा न करने देकर) मेवाड़ अभी-अभी दिल्लीपति से संघर्ष ले चुका है, अभी तो मेवाड़ी सैनिकों के घाव भी नहीं भर पाए होंगे—उन्हें फिर नए संघर्ष की ज्वाला में भोंक देना उचित नहीं होगा। राव सूरतान और लालपठान का संघर्ष मेवाड़ और मालवा-गुजरात के युद्ध में परिणत नहीं होने देना चाहिए। पिताजी ने निराशा की घड़ियों में महाराणाजी की शरण में जाने की इच्छा प्रकट की भी थी, किन्तु मैंने ही उन्हें रोका है।

पृथ्वीराज—मेवाड़ के हित का इतना ध्यान है तुम्हें ?

तारा—क्यों न हो, मेवाड़ भारत के भाग्याकाश का रवि है। आए दिन विदेशी शक्तियों का राहु उसे ग्रसने का यत्न करता है, किन्तु अन्त में उसके तेज के सम्मुख ठहर नहीं पाता। तारा सीसोदिया राजवंश के गौरव-रवि के खयास का कारण नहीं बनेगी।

पृथ्वीराज—जो तुम्हारी इच्छा तारा, मेवाड़ की सेना को तुम स्वीकार न करो; किन्तु पृथ्वीराज को अपनी सेना का एक सैनिक समझकर तो साथ लोगी ? तारारूपी दुर्गा के साथ पृथ्वीराज शंकर की भांति ताण्डव करना चाहता है।

तारा—ताण्डव का समय आने दो राजकुमार, आप मेरे दाहिने हाथ पर संहार का खेल खेलोगे तो मैं भी सहस्र गुणा बल अपने प्राणों में अनुभव करूंगी; किन्तु मेरी इच्छा है कि हमारे इस प्रलयंकर खेल का न तो मेरे पिताजी को पता चले न महाराणाजी को।

पृथ्वीराज—तुम्हारे आदेश का पालन होगा। किन्तु एक प्रार्थना मेरी है कि इस प्रकार जंगलों में भटकने की बजाय राव सूरतान चित्तौड़ के राजमहल का आतिथ्य स्वीकार करें।

तारा—राव सूरतान को आमन्त्रित कर रहे हो, तारा को नहीं ? (मुस्कराती हुई।)

पृथ्वीराज—जिसने मेरे प्राणों में घर बसा लिया, उसे क्या आमन्त्रण की प्रतीक्षा करनी होगी ?

(ऐसा कहते हुए पृथ्वीराज तारा का हाथ पकड़ लेता है ।)

तारा—(हाथ छुड़ाते हुए) नहीं राजकुमार, प्रीति की इस गंगा को अभी शंकर की जटाओं में उलझी रहने दो । जब समय आएगा वह अवतरित होगी । चलो, पास ही हमारी कुटी है, वहां चलकर पिताजी को स्वयं ही चित्तौड़ चलने का निमन्त्रण दो ।

पृथ्वीराज—किन्तु अब तुम तो मेवाड़ का आतिथ्य ग्रहण करने में उनका विरोध नहीं करोगी ?

तारा—नहीं ।

पृथ्वीराज—तो चलो ।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़दुर्ग का एक पथ । समय—दिन का तीसरा पहर । एक तरफ से सूरजमल विचारमग्न किसी धुन में लवलीन प्रवेश करता है और दूसरी ओर से उत्तेजित दशा में ज्वाला तेज चाल से प्रवेश करती है । ज्वाला इस समय भव्य एवं बहुमूल्य वेशभूषा में है, जो मेवाड़ की एक राजकुमारी के उपयुक्त है, किन्तु उसकी मनोरम वेशभूषा से उसके हावभाव एवं आंखों से प्रकट होने वाली भावनाओं का मेल नहीं मिलता । किसी उत्तेजना के कारण उसके गौर वर्ण कपोल एवं सुदीर्घ नेत्र बालरवि की भांति रक्तिम हो उठे हैं । सूरजमल और ज्वाला दो विपरीत दिशाओं में प्रवेश

करते हुए अपनी ही भावनाओं में लीन रहने के कारण एक दूसरे को देख नहीं पाते, और पास आने पर एक प्रकार से टकरा-से जाते हैं । तब दोनों का ध्यान एक-दूसरे की तरफ जाता है और दोनों एक-दूसरे को देखते हैं । दोनों की दृष्टि में प्रश्नचिह्न-सा अंकित दिखाई देता है ।)

सूरजमल—अप्रत्याशित आंधी की भांति तू कहां से चली आ रही है ?

ज्वाला—राजमहल से । किन्तु तुम बवंडर की भांति कहां जा रहे हो ?

सूरजमल—राजमहल को ।

ज्वाला—जिस राजमहल को मैं मन ही मन अंतिम नमस्कार कर आई हूं, उसमें अब तुम्हें भी पैर नहीं रखने चाहिए ।

सूरजमल—राजमहल पर ऐसा क्रोध क्यों ?

ज्वाला—क्योंकि राजमहल बहुत ऊंचा हो गया है और उसकी दृष्टि में हम लोगों का अस्तित्व कोई मूल्य नहीं रखता ।

सूरजमल—ऐसा क्यों कहती हो बहिन ! मुझे तो राजमहल की ऊंचाई कभी आपत्तिजनक नहीं जान पड़ी । मां-बाप अपनी सन्तान से बड़े होते ही हैं । राजमहल में हमने जन्म लिया है, उसकी गोद में हम खेले हैं । पंछियों को भी अपने नीड़ से प्रेम होता है । जब मैं राजमहल के द्वार में प्रवेश करता हूं तो मुझे जान पड़ता है कि वह अपने वात्सल्यपूर्ण हाथ बढ़ाकर मुझे गोद में उठा लेने को व्याकुल होकर बढ़ा चला आ रहा है ।

ज्वाला—दादा भाई, तुम तो स्वप्न-जगत् में विचरण करते हो । मुझे भी राजमहल से कम स्नेह नहीं रहा है, किन्तु कभी शीतल चन्दन भी भयंकर ज्वाला में परिवर्तित हो जाता है । आज चित्तीड़ का राजमहल मुझे तो प्रज्वलित ज्वालामुखी जान पड़ता है, जिसने मेरे तन-मन को झुलसा दिया है ।

सूरजमल—क्या राजमहल में किसीने तेरा अपमान किया है ?

ज्वाला—हां, जिनके लिए हमने अपने पिता से भी विद्रोह किया, वे आज हमारा उपहास करते हैं । महाराणा रायमल की सुपुत्री आनन्ददेवी ने

आज मेरे साथ एक ही थाली में भोजन करने से इन्कार किया है ।

सूरजमल—क्यों ? गहलोत-शाखा का प्रत्येक व्यक्ति, राजकुल का सदस्य अथवा साधारण सैनिक, भोजन करते समय सदा ही समान समझा गया है । एक थाल में भोजन करना हमारी परम्परा रही है । इस परम्परा के विपरीत यह घटना वास्तव में मेवाड़ के दुर्भाग्य की सूचक है; किन्तु मैं पूछता हूँ, महाराणा रायमल की पुत्री आनन्ददेवी ने ऐसा अविवेकपूर्ण कार्य क्यों किया ?

ज्वाला—सत्ता का मद किसे नहीं होता ? वह मेवाड़ के महाराणा की पुत्री है और सिरोंही नरेश की महारानी । ज्वाला क्या है ? कभी उसके पिता मेवाड़ के महाराणा थे, किन्तु आज तो वर्तमान महाराणा की अनुकम्पा पर जीवित रहने वाले सूरजमल की बहिन मात्र है । आनन्ददेवी को अधिकार है कि वह ज्वाला पर मनमाने काल्पनिक लांछन की वर्षा करे ।

सूरजमल—क्या लांछन लगाया उसने तुझपर ?

ज्वाला—जो महासती सीता पर किसी दिन एक दुर्बुद्धि और दुर्मुख धोबी ने लगाया था ।

सूरजमल—अर्थात् ?

ज्वाला—उसने तीखेपन से कहा, 'दिल्ली के विदेशी और विधर्मी सम्राट् के रत्नखचित स्वर्णथालों में महीनों भोजन करती रहने वाली सौभाग्य-शालिनी ज्वाला के साथ भोजन करने का दुस्साहस आनन्ददेवी नहीं कर सकती ।'

सूरजमल—हूँ (क्रोध से दांतों से ओंठ दबाता है ।) निश्चय ही उसने अत्यन्त नीचता का परिचय दिया है ।

ज्वाला—सुनते ही मैं तो आग-बबूला हो गई । मेरी आंखें अंगार-सी लाल हो उठीं, किन्तु आनन्ददेवी ने ज्वाला को और भी भड़काने के लिए कहा, 'पद्मिनी के समान रूप-यौवन का आकर्षण लेकर वासनालोलुप दिल्लीपति के

राजमहल में रहने वाली नारी अपनी पवित्रता का अभिमान नहीं कर सकती ।'

सूरजमल—ऐसा कहकर उसने मेवाड़ पर हमारे कोप को ग्रामन्वित किया है । जान पड़ता है कि मेवाड़ के राजपूत हमें मनुष्य बनकर नहीं रहने देना चाहते । मुझे तेरे अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए पिशाच बनना पड़ेगा ।

ज्वाला—केवल आनन्ददेवी ने ही नहीं, राजकुल की प्रत्येक नारी ने ज्वाला का अपमान किया है । वे आनन्ददेवी की बात सुनकर एवं मुझे नागिन की भांति क्रोध में भरी हुई देखकर एक साथ ही खिलखिलाकर हंस पड़ी । मेरे प्राणों में उनकी हंसी की आवाज सहस्रों बाणों की भांति चुभ रही है । दादा भाई, मुझे एक क्षण के लिए भी चैन नहीं पड़ता ।

सूरजमल—निश्चय ही तेरा क्रोध स्वाभाविक और उचित है । वैभव, प्रभुता और सुखों की चाह किस मनुष्य को नहीं होती, किन्तु कुछ लोग सांसारिक सुखों को मनुष्यता से अधिक प्रिय नहीं समझते । ऐसी ही एक भावना ने ज्वाला को दिल्ली की साम्राज्ञी बनने से रोका था ; किन्तु इतना त्याग करने के उपरान्त भी अपने ही स्वजनों से उसे तिरस्कार प्राप्त हो, तो क्यों न उसके प्राणों में महाकाल की ज्वाला प्रज्वलित हो उठे । सूरजमल अपनी बहिन के अपमान का पूरा-पूरा बदला लेगा ।

ज्वाला—किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस घटना के पीछे केवल ज्वाला का अपमान करने का उद्देश्य नहीं है, अपितु सूरजमल को भी उत्तेजित करना अभीष्ट है । उन्हें भय है कि किसी दिन सूरजमल को मेवाड़ के राजमुकुट का मोह हो सकता है ; वह संग्रामसिंह, पृथ्वीराज एवं जयमल का प्रतिद्वन्द्वी बन सकता है ।

सूरजमल—सच पूछा जाए तो मेवाड़ की राजगद्दी का वास्तविक अधिकारी सूरजमल ही है । स्वर्गीय पिताजी ने चाहे कैसा भी भयान्य अपराध किया हो, किन्तु वह महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र थे और वह मेवाड़ के महाराणा

भी रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र सूरजमल को ही मेवाड़ का महाराणा होना चाहिए था।

ज्वाला—और उसे होना ही चाहिए। मुझे अपने अपमान का बदला लेना होता तो मैं अपने सामने रखी हुई थाली को ही कृष्ण का सुदर्शन चक्र बनाकर आनन्ददेवी की गर्दन काट डालती। तुम जानते हो, ज्वाला अपने क्रोध पर संयम रखना नहीं जानती, लेकिन स्वभाव के विपरीत मैं बिना रक्तपात किए चुपचाप चली आई। चली आई, क्योंकि मैं दादा भाई को मेवाड़ के राजसिंहासन पर आसीन होते देखना चाहती हूँ।

सूरजमल—बहिन, अपने बड़े भाई पर तेरा जो स्नेह है उसका मैं आदर करता हूँ। क्रोध से मेरे प्राण भी जल रहे हैं, किन्तु फिर विवेकपूर्वक सोचने से मुझे जान पड़ता है कि हमें संयम से काम लेना चाहिए। निश्चय ही न्यायतः मैं मेवाड़ के सिंहासन का अधिकारी हूँ, किन्तु मेवाड़ के हित में हमें राजकुल के पारस्परिक स्नेह को कायम रखने का यत्न करना चाहिए।

ज्वाला—इसका अर्थ हुआ कि राजपूत होकर भी हम अपमान बर्दाश्त कर लें।

सूरजमल—नहीं, अपमान को बर्दाश्त कर सकना मृत्यु की पीड़ा से भी कठिन होता है, किन्तु अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए महाराणा रायमल से राजमुकुट छीनने का यत्न करना क्या अतीव आवश्यक है ?

ज्वाला—नहीं त और दूसरा मार्ग क्या है ?

सूरजमल—ज्वाला, तेरा अपमान संकीर्ण हृदया नारियों ने किया है; महाराणा रायमल तो सूरजमल से स्नेहपूर्ण व्यवहार ही करते हैं। उन्होंने दिल्लीपति पर विजय पाने के उपलक्ष्य में मुझपर प्रसन्न होकर जागीर भी प्रदान की है।

ज्वाला—हूँ ! कुत्ते के आगे टुकड़ा डालकर उसे शान्त किया जाता है। जागीर देकर तुम्हें छला गया है। मेवाड़ की सारी भूमि, सम्पूर्ण राज्य-वैभव तुम्हारा है। तुम्हारी वस्तु में से एक लघु अंश तुमको दानस्वरूप प्रदान

किया गया है। डाकू लोग दानी बनने का पाखंड करते हैं। नहीं दादा भाई, दान लेना ब्राह्मणों और भिखारियों का काम है। राजपूत के हाथ में जब तक तलवार है वह अपनी बपौती को प्राप्त करने के लिए यत्न करता है। मैं तुम्हें अकर्मण्य और कायर नहीं बनने दूंगी।

सूरजमल—ठीक है बहिन, तू सूरजमल को पिताजी के पथ पर चलाना चाहती है ; किन्तु उतना नीच सूरजमल बन सकेगा, इसमें सन्देह है। फिर भी वह अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिए मेवाड़ के राजकुमारों से प्रतिद्वन्द्विता अवश्य करेगा। महाराणा रायमल के पश्चात् संग्रामसिंह, पृथ्वीराज अथवा जयमल तीनों में से कोई भी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकेगा। सूरजमल के जीवन का संकल्प यही है।

(इसी समय संग्रामसिंह और पृथ्वीराज प्रवेश करते हैं। दोनों सशस्त्र हैं और जान पड़ता है जैसे आखेट के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। उन्हें देखकर सूरजमल और ज्वाला उनके मार्ग से अलग हट जाते हैं। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज परस्पर कुछ विवाद करते हुए आ रहे हैं।)

पृथ्वीराज—किन्तु दादा भाई, यह सरासर अन्याय है कि बड़ा भाई ही राजगद्दी का स्वामी बने। राजमुकुट धारण करने की पात्रता तो योग्यता पर निर्भर होनी चाहिए।

संग्रामसिंह—योग्यता की कोई कसौटी निश्चित करना सरल नहीं है भैया, इसी कारण संघर्ष को वचाने के लिए नियम बना दिया है कि ज्येष्ठ पुत्र पिता का उत्तराधिकारी हो। शेष भाई उसके सहायक बनकर रहें और ज्येष्ठ भाई को पिता के समान समझें। हमारा हिन्दू समाज इसी विधान को पालता हुआ पारस्परिक विद्वेष से वचाता आया है।

सूरजमल—(संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के बीच में आकर) किन्तु इस विधान का क्या सर्वदा पालन होता है ?

संग्रामसिंह—ओह, दादा भाई आप ! और (ज्वाला को देखकर) बहिन ज्वाला !
यहां क्यों खड़े हो दोनों ?

ज्वाला—वयों, क्या चित्तौड़दुर्ग के पथों पर भी खड़े होने का अधिकार ऊदाजी की सन्तानों को नहीं है ?

संग्रामसिंह—जान पड़ता है, तुम आज लड़ने के लिए ही घर से निकली हो । कोई नहीं मिला तो अपने भाइयों से ही भगड़ना चाहती हो । किसने कहा कि ऊदाजी की सन्तान को मेवाड़ में किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं है; उनके प्रति तो मेवाड़ को कृतज्ञ होना चाहिए । स्वाधीनता की रक्षा के लिए, देश का सम्मान अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, अपने वंश की मर्यादा का मान बढ़ाने के लिए—जो सन्तान अपने पिता से संग्राम कर सकती है, उसको संसार अपने हृदय में युग-युग तक स्थान देता है । ऐसे व्यक्ति प्रह्लाद की भांति पूजनीय होते हैं । उनके उदाहरण मानवता का मार्ग-प्रदर्शन करते हैं । ज्वाला और सूरजमल ऐसे ही व्यक्ति हैं ; केवल चित्तौड़गढ़ ही नहीं, अपितु मेवाड़ की सम्पूर्ण भूमि पर उनका अधिकार है ।

सूरजमल—अधिकार है एक प्रजा की भांति, राजा की भांति नहीं ।

पृथ्वीराज—राजा तो एक ही होता है ।

ज्वाला—और युवराज ?

पृथ्वीराज—वह भी एक ही हो सकता है ।

ज्वाला—किन्तु मेवाड़ का राजा कौन होना चाहिए ?

संग्रामसिंह—क्या इस प्रश्न को पुनः उठाने की आवश्यकता है ? सहस्रों मस्तकों की बलि देकर अभी-अभी तो इसका समाधान प्राप्त किया है ।

ज्वाला—अर्थात् जिसने अधिकार कर लिया वह अधिकारी हुआ । कौरवों ने भी तो छल-बल से पांडवों को अपने राज्य से वंचित कर सम्पूर्ण राज्य को अपने अधिकार में ले लिया था, तब पांडवों ने अपने स्वत्व की प्राप्ति के

लिए क्यों संग्राम किया था और क्यों भगवान् कृष्ण ने पाण्डवों का साथ दिया था ?

संग्रामसिंह—किन्तु मेवाड़ में तो कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित नहीं है और मेवाड़ राजकुल में कोई ऐसा दुरात्मा नहीं है जो कहे कि बिना तलवार द्वारा फँसला हुए सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देना असम्भव है ।

ज्वाला—दादा भाई, अभी तो यही प्रश्न हल करना है कि मेवाड़ का महाराणा कौन हो । पितृहंता ऊदाजी मेवाड़ के सिंहासन पर नहीं बैठ सकते थे; इस बात को उनकी संतान ने भी स्वीकार किया है । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनकी संतान अपने स्वत्व को छोड़ देने के लिए भी तैयार है ।

पृथ्वीराज—वह तैयार हो या न हो, स्वर्गीय महाराणा कुम्भा के वीर पुत्र महाराणा रायमल ने अपने वीर पुत्रों की सबल बाहुओं के सहयोग से इस प्रश्न का सदा के लिए समाधान कर दिया है, अब इसपर पुनर्विचार नहीं हो सकता ।

सूरजमल—पृथ्वीराज, यदि तलवार के ही हाथ में न्याय करना है और तलवार ही तर्क है तब तो ऊदाजी के पुत्र के हाथ में भी तलवार पकड़ने का बल है । वह भी तलवार के तर्क से मेवाड़ के राजसिंहासन पर आसीन होने का दावा करता है ।

संग्रामसिंह—अवश्य ही दादा भाई, तलवार का तर्क आपके हाथ में है और इस तर्कबल से मेवाड़ की गद्दी पर अधिकार करने का यत्न आप कर सकते हैं । किन्तु मनुष्यता के नाम पर, भारत की सुरक्षा के हित में मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि इस भयानक विचार को अपने मस्तक से निकाल दीजिए ।

पृथ्वीराज—(संग्रामसिंह से) नहीं दादा भाई, यह भयानक विचार एक बार मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है, तो उसे किसीकी तलवार ही निकाल सकती है । ऊदाजी के भाग्य से उनकी संतान ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं

की, तो उन्हें भी अपनी तकदीर आजमाने दो। समर-भूमि में ऊदाजी के पुत्र और महाराणा रायमल के पुत्रों की तलवारों को टकराने दीजिए।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज, तुम तो 'आ बैल मुझे मार' वाली कहावत चरितार्थ करते हो। तुमको पृथ्वीराज चौहान की भांति सतत् युद्ध की खोज रहती है। शत्रु न मिले तो स्नेहियों पर ही तुम्हारी तलवार चलना चाहती है। ऐसी तीव्र रण-लालसा का परिणाम क्या होता है? देश आन्तरिक कलह से जर्जर और विभाजित रहता है। तब कोई विदेशी अपना पाशविक पंजा बढ़ाता है और देश को पराधीनता के पाश में जकड़ देता है। तुम अपना उत्साह विध्वंसक पथ पर अग्रसर होने में नहीं, निर्माण-पथ पर चलने में लगाओ और दादा भाई सूरजमल, आपसे भी मेरा निवेदन है कि प्रत्येक प्रश्न को देशहित की दृष्टि से देखिए। राज्य-लालसा का आपके हृदय में जाग्रत होना सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि यह हमारे राजकुल के रक्त में प्रवाहित है, किन्तु इस लालसा की तृप्ति के लिए तलवार का तर्क देना अनिवार्य नहीं है। मेवाड़ भूमि को अजस्र रक्त-वर्षा से प्लावित करते रहना उचित नहीं। हम स्नेहपूर्वक इस प्रश्न का भी समाधान कर लेगे।

ज्वाला—आपका अभिप्राय है कि साहूकार चोर से स्नेहपूर्वक कहे, 'ले लो, तुम मेरी मारी सम्पत्ति ले जाओ।'।

संग्रामसिंह—नहीं बहिन, मेरा यह अभिप्राय नहीं है। स्वत्व और अधिकारों पर डाका डालने वाले मस्तक को धड़ से अलग करने के लिए बाप्पा रावल के वंशजों की तलवार सदा प्रस्तुत रहेगी; किन्तु उन्हें अपने उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में भी सोचना चाहिए। राज्य का स्वामी होना क्या केवल ऐश्वर्य-भोग के लिए है? हम तो अपने देश के प्रहरीमात्र हैं और महाराणा हम सबके मुखिया हैं। हम सबको अपने उत्तरदायित्व के पालन में होड़ करनी चाहिए, न कि प्रभुता के उपभोग में।

सूरजमल — तुम्हारी इच्छा क्या है, संग्रामसिंह ?

संग्रामसिंह—दादा भाई, भगवान् ताऊजी की आत्मा को शान्ति दे। यदि वह स्वाभाविक रीति से मेवाड़ के महाराणा बनते, तो मुझे विश्वास है, पिताजी उनके दाहिने हाथ बनकर उनका साथ देते, किन्तु अब जब कर्त्तव्य की पुकार ने उन्हें छंगी धारण करने को विवश कर दिया तो हमें—ऊदाजी के पुत्र सूरजमल को भी—उनकी अर्थात् मेवाड़ की शक्ति बनकर रहना चाहिए।

ज्वाला—श्रीर रायमलजी के पश्चात् संग्रामसिंह मेवाड़ के महाराणा हों, इसे भी चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए। यही कहना चाहते हो न ?

संग्रामसिंह—नहीं बहिन, संग्रामसिंह के हृदय में अनेक आकांक्षाएं हैं। मेवाड़ का महाराणा-पद उसकी आकांक्षाओं की परिधि नहीं है। उसके कारण मेवाड़ में गृह-कलह का सूत्रपात हो इससे बड़ा दुर्भाग्य उसके लिए और क्या हो सकता है ? सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय पर विचार करने के पहले हमें मेवाड़ भूमि के हिताहित पर विचार करना है। हत्यारे ऊदाजी के पुत्र के पक्ष में मेवाड़ को विदेशियों के चंगुल में फंसने से बचाने वाले महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र संग्रामसिंह युवराज-पद का परित्याग करने को प्रस्तुत है।

पृथ्वीराज—किन्तु पृथ्वीराज प्रस्तुत नहीं है। राज्यसत्ता छोड़ने की वस्तु नहीं है। (संग्रामसिंह से) आपके तर्क से काम लेते तो भारत को गृह-कलह से बचाने के लिए पांडु-पुत्रों को कौरवों से अपना राज्य वापस पाने की अभिलाषा ही नहीं करनी चाहिए थी। पांडु-पुत्र अधिक विवेकशील थे, अतः त्याग उन्हें ही करना चाहिए था। दादा भाई, पृथ्वीराज का यह प्रण है कि हत्यारे ऊदाजी का पुत्र मेवाड़ के राजसहासिन पर नहीं बैठ सकेगा !

संग्रामसिंह—शांत भैया, राजपूत के प्रण का कुछ मूल्य होता है, अतः क्षणिक उत्तेजना में उसे संकल्प नहीं करना चाहिए। महाभारत-काल के श्रीर आज के भारत में बहुत अन्तर है। उस समय भारत पर विदेशियों की गृद्धदृष्टि नहीं लगी थी। उस समय भारतीय परस्पर युद्ध करते हुए भी

विदेशियों के मुकाबले में एक होकर उनसे लोहा लेने को प्रस्तुत थे; किन्तु अब हमारे देश पर कई शताब्दियों से एक के बाद दूसरी विदेशी शक्ति का आक्रमण हो रहा है। हमारा देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित है। हममें पारस्परिक कलह चल रहा है और प्रत्येक राजवंश आंतरिक कलह में फंसा हुआ है। हमारा समाज भी जातियों और धर्मों में बंट गया है। ऐसी स्थिति में मेवाड़ के राजवंश में परस्पर तलवारों की परीक्षा नहीं होनी चाहिए।

पृथ्वीराज—इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति हठधर्मी पर आ जाए उसकी बात मानी जाए। नहीं दादा भाई, पृथ्वीराज तो सुई को नोक के बराबर भूमि भी हत्यारे ऊदाजी के पुत्र को देने को प्रस्तुत नहीं है, बल्कि पिताजी ने जो जागीर इन्हें दी है, मुझे तो उसपर भी आपत्ति है।

संग्रामसिंह—तो समझना चाहिए कि मेवाड़ के दुर्भाग्य की घड़ियां अभी समाप्त नहीं हुई। हम परस्पर समझौता न कर पाएं तो महाराणाजी से ही निर्णय करा लें। (सूरजमल से) क्यों दादा भाई, आपको यह स्वीकार है ?

सूरजमल—हां।

ज्वाला—नहीं, अपराधी न्यायकर्ता नहीं हो सकता।

सूरजमल—नहीं बहिन, राजपूत न्याय के आसन पर बैठकर अन्याय नहीं कर सकता। मैं काकाजी के न्याय को स्वीकार करूंगा।

पृथ्वीराज—यही सही। किन्तु अब यहां समय नष्ट क्यों करें। हम आखेट के लिए निकले थे और यहां विवाद में उलझ गए। अगले द्वार पर हमारे अश्व प्रतीक्षा कर रहे हैं।

संग्रामसिंह—(सूरजमल से) आप भी चलें दादा भाई।

सूरजमल—राजपूत आखेट के आमन्त्रण को अस्वीकार नहीं करता। तुम लोग चलो, मैं शीघ्रता से तैयार होकर दुर्ग के मुख्य द्वार पर आ मिलूंगा।

(संग्रामसिंह और पृथ्वीराज का एक ओर तथा सूरजमल व ज्वाला का दूसरी ओर प्रस्थान।)

(पट-परिवर्तन)

सातवां दृश्य

(स्थान—भवानी का मन्दिर । समय—रात्रि । परदा उठने के पूर्व नेपथ्य से मन्दिर के घण्टे का निनाद सुनाई देता है, एवं दो व्यक्तियों की सुगम्भीर वाणी में उच्चरित स्तुति सुनाई देती है ।)

स्तुति—जय भगवति देवि नमो वरदे^१ ।

जय पापविनाशिनि बहुफलदे ।

जय शुंभनिशुंभ कपाल धरे ।

प्रणमामि तु देवि नरार्ति हरे ।

जय चन्द्रदिवाकर नेत्र धरे ।

जय पावकभूषित वक्त्र वरे ।

जय भैरवदेहविलीन परे ।

जय अंधकदैत्यविशेष करे ।

जय महिष विमर्दिनि शूल करे ।

१. हे वरदायिनी देवि, हे भगवति, तुम्हारी जय हो । हे पापों को नष्ट करने वाली और अनन्त फल देने वाली देवि, तुम्हारी जय हो । हे शुंभ-निशुंभ के मुण्डों को धारण करने वाली देवि, तुम्हारी जय हो । हे मनुष्यों की पीड़ा हरने वाली देवि, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं । हे सूर्यचन्द्र-रूपी नेत्रों को धारण करने वाली, तुम्हारी जय हो । हे अग्नि के समान देदीप्यमान मुख से शोभित होने वाली, तुम्हारी जय हो । हे भैरव शरीर में लीन रहने वाली और अन्धकासुर का शोषण करने वाली देवि, तुम्हारी जय हो । हे महिषासुर का मर्दन करने वाली, शूलधारिणी और लोक के समस्त पापों को दूर करने वाली भगवती, तुम्हारी जय हो । ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और इन्द्र से नमस्कृत होने वाली देवि, तुम्हारी जय हो ।

—महर्षि व्यासकृत भगवती स्तोत्र के तीन श्लोक

जय लोकसमस्तकपाप हरे ।

जय देवि पितामहविष्णुमते ।

जय भास्करशक्रशिरोऽवनते ।

(परवा उठता है तो भवानी का मन्दिर दिखाई देता है । मंच के मध्य भाग में गर्भगृह का द्वार दिखाई देता है, जो खुला हुआ है । द्वार के दोनों ओर गर्भगृह की सामने वाली दीवार चली गई है । मंच के शेष भाग में कुछ स्तम्भ मंडल का आभास देते हैं । गर्भगृह के द्वार के सामने दो स्तम्भों के मध्य छत से लटकता हुआ एक दीर्घ-काय घंटा दिखाई देता है, जिसे महाराणा रायमल निनादित कर रहे हैं । द्वार के दोनों ओर दो दीपदानों में दीप प्रज्वलित हैं । द्वार में से चार भुजाओं वाली भवानी की मूर्ति के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं जो सिंह पर आरुढ़ हैं, उनके एक हाथ में त्रिशूल है, दूसरे में खड्ग, तीसरे में कटा हुआ मस्तक और चौथे में खप्पर है । गले में मुण्डों की माला है । चरणों के पास एक खप्पर सदृश पात्र रखा है, जिसमें से धूप का धूम उठ रहा है । गर्भगृह में राजयोगी (मन्दिर का पुजारी) आरती करके आरती का पात्र महाराणा रायमल की तरफ बढ़ाता है और वह आरती ग्रहण करते हैं । राजयोगी आरती का पात्र मूर्ति के चरणों के पास रखकर धूप के पात्र में से चुटकी भरकर महाराणा रायमल को देते हैं जिसे वह अपने कपाल से मल लेते हैं ।)

महाराणा रायमल—(मूर्ति को हाथ जोड़कर) भगवती भवानी की जय ।

राजयोगी—(गर्भगृह से बाहर जाकर) आज बिना पूर्वसूचना के महाराणाजी को आने का कष्ट किस कारण करना पड़ा ?

महाराणा रायमल—राजपूतों की इष्टदेवि, प्राणों में नवस्फूर्ति संचारित करने वाली भगवती भवानी के मन्दिर में आने में कष्ट कैसा राजयोगी जी ? खड्गपूजा के समारोह के पश्चात् एक बार भी देवि के चरणों में प्रणाम करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका, यही खेद की बात है । जब कभी

हृदय और मस्तिष्क में संघर्ष छिड़ पड़ता है तब प्रकाश और प्रेरणा पाने के लिए यहां आना पड़ता है ।

राजयोगी—किन्तु महाराणा जी का सर्वथा एकाकी अकस्मात् आगमन आश्चर्य का कारण अवश्य है ।

महाराणा रायमल—किन्तु मैं एकाकी तो नहीं आया ।

राजयोगी—एकाकी नहीं आए, यह तो ठीक है ; क्योंकि अन्तर्यामिनी, विश्व-व्यापिनी महाशक्ति अणु-अणु में व्याप्त होकर प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक प्राणी के साथ रहती है । इस अर्थ में तो कहा जा सकता कि महाराणा जी यहां अकेले नहीं आए ।

महाराणा रायमल—किन्तु आध्यात्मिक उच्च स्तर पर मैं इस समय चर्चा नहीं कर रहा । आध्यात्मिक वाणी में बोलें तो अखिल विश्व भवानी का मन्दिर है और किसी प्राणी को शक्ति की उपासना करने के लिए किसी विशेष स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं, किन्तु भौतिक जगत् की परिधि से बाहर न जा सकने वाला प्राणी महाराणा साधारण सांसारिक की मोटी बुद्धि से आपसे चर्चा कर रहा है । सचमुच हम चित्तौड़गढ़ से पांच व्यक्ति साथ चले थे ।

राजयोगी—फिर भी केवल चार अंगरक्षक लेकर महाराणा का इस भयानक अंधेरी रात में निर्जन स्थानों में भ्रमण करना निरापद नहीं है । श्रीभी मेवाड़ में षड्यन्त्रों का जाल समाप्त नहीं हुआ । काले नाग से भी अधिक जहरीले नर-नाग जहां-तहां बिलों में मुंह छिपाए बैठे हैं । अवसर पाते ही वे फन उठाकर डस लेते हैं ।

महाराणा रायमल—इसे मैं जानता हूं, फिर भी आज मैं एक भी अंगरक्षक साथ नहीं लाया । किन्तु मेरे साथ आने वाले व्यक्ति वेतनभोगी अंगरक्षकों की अपेक्षा अधिक सबल और विश्वासपात्र हैं । वैसे जिस पर भवानी की कृपा का हाथ है, उसे किसी भी षड्यन्त्र से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं । मेवाड़ ने सदा ही ऐसे काले नागों की धूँधली कुचल डाली है । प्रत्येक विपत्ति ने मेवाड़ में नवजीवन का संचार किया है । मैं अन्धकार में छिपे

हुए सपों को सामने लाना चाहता हूँ और इसीलिए उन्हें अपने पर आक्रमण करने का अवसर देता हूँ ।

राजयोगी—जानता हूँ महाराणा जी, संकटों को खोजते फिरना राजपूत का स्वभाव है और इसी कारण मेवाड़ प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि रक्तरंजित हो चुकी है ।

महाराणा रायमल—खड्गधारिणी, मुण्डमाला-विभूषित, शत्रु के तप्त रक्त से स्नान करने वाली चण्डी के अनन्य उपासक राजयोगी को क्या इसका पश्चात्ताप है ?

राजयोगी—नहीं राजन्, तनिक भी नहीं ; देश की वीर-भावना को चिरजाग्रत रखने के लिए यदाकदा मेघों के गर्जन की भाँति शस्त्रों की भंकार सुनाई पड़नी ही चाहिए, और रक्त की वर्षा से भूमि को प्लावित होना ही चाहिए ।

महाराणा रायमल—चाहे हम परस्पर अपने स्वजनों का ही मस्तक काटें ।

राजयोगी—तलवारों को जंग लगाने की अपेक्षा परस्पर ही तलवारों का टकराना बुरा नहीं है महाराणा जी ! भारत में क्षत्रियों के वंशाभिमान एवं व्यक्तिगत आकांक्षाओं ने अनेक बार व्यर्थ ही पृथ्वी को रक्त से रंगा है, अनेक साहसी प्राणों की बलि दे दी है, देश को अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित कर दिया है । निश्चय ही इससे देश की शक्ति क्षीण हुई है, विदेशी आक्रमणकारियों ने इसका लाभ भी उठाया है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में इससे देश का कुछ भला भी हुआ है । क्षत्रियों की तलवार के निरन्तर प्रयोग में रहने से भारत का स्वाभिमान, स्वाधीनता की भावना, आन के लिए मर-मिटने की साध, निर्भयता और आक्रमणकारी से लोहा लेने की आकांक्षा जीवित रह सकी है ।

महाराणा रायमल—आप गहन अन्धकार में आशा की उज्ज्वल किरणों का दर्शन करते हैं ।

राजयोगी—महाराणा जी, हमारा देश कई शताब्दियों से पारस्परिक कलह में

रत रहने के कारण अपने स्वर्णिम अतीत के गौरव को बहुत कुछ गंवा चुका है, इसमें भी सन्देह नहीं है। फिर भी हमें सर्वथा निराश नहीं होना चाहिए; यह मुर्दों का देश नहीं है।

महाराणा रायमल—निश्चय ही भारत में साहस और वीरता का अभाव नहीं है—पश्चिम क्षितिज से यूनानी, शक, हूण, अरब आदि भीषण बवंडर की भांति उठने वाली प्रचण्ड हिंसक शक्तियां भारत के बल-विक्रम से पराजित होकर अपना अस्तित्व खो बैठीं या लौटकर चली गईं; किन्तु अब देश की स्थिति पहले के समान नहीं है। आज हम पतन की पराकाष्ठा पर पहुंच चुके हैं।

राजयोगी—बड़े आश्चर्य की बात है कि अदम्य उत्साह के धनी सहस्रों मेवाड़ियों में नवस्फूर्ति संचारित करने वाले महाराणा रायमल की वाणी में आज पराजय की भावना के स्वर सुनाई पड़ रहे हैं।

महाराणा रायमल—इसका कारण है राजयोगी, और वही कारण मुझे यहां खींच लाया है। मेवाड़ में गहलोतों की ध्वजा फहराने वाले आदि पुरुष बाप्पा रावल मेवाड़ के सिंहासन पर एकलिंग के दीवान की स्थिति में आसीन हुए थे। उनके वंशज उस आदर्श से पतित हो गए हैं। आज वे दीवान से राजा—महाराणा बन बैठे हैं। प्रभुता और ऐश्वर्य का उपभोग करने के लिए राज्यलिप्सा ने उनकी विवेक-बुद्धि को निगल लिया है। आज पुत्र पिता की हत्या करता है, भाई भाई की गर्दन पर तलवार चलाता है। जान पड़ता है, ऊदाजी के प्रेत ने प्रत्येक सीसोदिया के मस्तिष्क को बावला बना दिया है।

राजयोगी—किन्तु मैं तो समझता हूं, आपने स्वर्गीय ऊदाजी के पड़्यन्त्रों के घटाटोप को अपने पराक्रम के प्रभंजन से छिन्न-भिन्न कर दिया है। दिल्ली-पति का गर्व भी आपने छार कर दिया है। अब आपकी वाणी में आशंका क्यों प्रकट हो रही है? क्या कोई नया संकट खड़ा हुआ है?

महाराणा रायमल—हां, और यह संकट बाहर से नहीं आया, अपितु मेवाड़ के

राजमहल में ही विष-वृक्ष अंकुरित हुआ है। मेवाड़ के राजसिंहासन के नीचे एक ज्वालागिरि फटने को आतुर है।

राजयोगी—आगामी संकट का आभास मिल जाना शुभ होता है महाराणा जी ! जब आप अपने देश और अपनी शाखा के हितसाधन के लिए सावधान है तो भवानी के आशीर्वाद से प्रत्येक नवीन ज्वाला में तपकर गहलोतों का यश स्वर्ण की भांति उज्ज्वलतर होता जाएगा।

महाराणा रायमल—नहीं राजयोगी, मुझे गहलोतों की कीर्ति-कौमुदी से देश के भविष्य की, देश अर्थात् भारत के भविष्य की अधिक चिन्ता है। उत्तर भारत में कोई राज्यसत्ता ऐसी नहीं बची जो विदेशियों की बढ़ती हुई बाढ़ को रोक सके। मेवाड़ को ही यह कार्य करना है और इस योग्य बनने के लिए पहले उसे आन्तरिक दृढ़ता प्राप्त करनी होगी। फिर आगे बढ़कर भारत की स्वाधीनता के लिए समर छेड़ना होगा। स्वर्गीय महाराणा कुम्भाजी ने जो कार्य प्रारम्भ किया था, उसे हत्यारे ऊदाजी ने मिट्टी में मिला दिया। हमें वीरवर कुम्भाजी के स्वप्न-प्रासाद के खंडहरों पर नव-निर्माण करना है, किन्तु...

(विचारमग्न हो जाता है।)

राजयोगी—किन्तु क्या ?

महाराणा रायमल—किन्तु खेद है कि इस प्रासाद की एक दीवार खड़ी की जाती है तो कोई दुष्ट, स्वार्थी एवं देशद्रोही उसकी दूसरी दीवार को गिरा देता है। मुझे अपनी असमर्थता पर लज्जा आती है। जी चाहता है अपनी तलवार से अपना मस्तक काटकर भवानी के चरणों में चढ़ा दूं। तब कदाचित् मेवाड़ के मतवाले पथभ्रष्ट राजपूतों को सद्बुद्धि प्राप्त हो।

राजयोगी—नहीं महाराणा जी, आपका मस्तक बहुमूल्य है। मेवाड़ को अभी उसकी आवश्यकता है। भवानी की आज्ञा है कि जिन मस्तिष्कों में स्वार्थ, राज्यलिप्सा, अधिकार-मद और देशद्रोह के कीटाणु जन्म लें, उनको खड्ग से काटकर उनकी माला बनाकर देवी की ग्रीवा में डाल दिया जाए।

(इसी समय नेपथ्य में घोड़ों की टापें मनाई पड़ती हैं।)

महाराणा रायमल—वे आ रहे हैं, जिनके मस्तिष्क राज्यलिप्सा से उन्मत्त हो उठे हैं; जिन्हें मैंने हृदय-रक्त से सिंचित कर पाला है। क्या उनके मस्तक काट सकने की शक्ति मुझमें है ?

राजयोगी—महाराणा का तात्पर्य क्या है ?

महाराणा रायमल—मेवाड़ के राजकुमारों में युवराज-पद के लिए प्रतिस्पर्धा जाग्रत हो उठी है। वे तलवार से इसका फैसला करना चाहते थे, किन्तु मैंने उन्हें किसी प्रकार अभी तक शान्त रखा है। वे इस बात पर राजी हो गए हैं कि राजयोगी द्वारा भवानी का आदेश, जिसे युवराज-पद प्रदान करने का प्राप्त हो, उसे सब सहर्ष स्वीकार करे।

राजयोगी—बहुत कठिन प्रसंग है। क्या मुझे यह अप्रिय निर्णय करना ही होगा ?

महाराणा रायमल—हां।

राजयोगी—मुझे विश्वास है कि इसका निर्णय देने की मुझे आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

(यह कहकर राजयोगी गर्भगृह में प्रवेश कर दो मृगचर्म एवं तीन सुन्दर चांदी की चौकियां लाते हैं। एक मृगचर्म मन्दिर के द्वार के बगल में बिछाते हैं, एक द्वार के सामने और उसके साथ तीन चौकियां भी बिछा देते हैं।)

महाराणा रायमल—(जिस समय राजयोगी गर्भगृह में जाते और आसन बिछाते हैं।) इस निर्णय पर मेवाड़ का भविष्य निर्भर है और मेवाड़ के भविष्य पर भारत का। जब कभी भारत के राजा अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर पाते, तब वे राजगुरु की शरण में जाते हैं। आज मैं दशरथ की भांति वशिष्ठ के समान अपने गुरु के चरणों में उपस्थित हुआ हूं। मेरी प्रार्थना है आप अपने उत्तरदायित्व से मुंह न मोड़िए।

राजयोगी—(आसन बिछाते हुए) राजन्, राजयोगी अपना मस्तक देकर भी महाराणा जी की बुद्धिचिन्ता को दूर करने को प्रस्तुत है, किन्तु हम सबके अन्तर की भावना को जानने वाली और अपने भक्तों के भविष्य की चिन्ता

करने वाली भवानी अपना चमत्कार दिखाएगी ; आप देखिए तो सही, राजकुमार स्वयं ही अपने भाग्य का निर्णय कर लेंगे ।

(सारे आसन बिछ चुकते हैं ।)

राजयोगी—(द्वार के बगल वाले मृगचर्म की ओर अंगुली से निर्देश करते हुए)
महाराणाजी आसन ग्रहण करें ।

(महाराणा रायमल बैठते हैं । राजकुमार संग्रामसिंह, पृथ्वीराज, जयमल और सूरजमल प्रवेश करते हैं । प्रवेश करते ही वे घंटा बजाते हैं, एवं मूर्ति को दण्डवत् करते हैं । राजयोगी राजकुमारों को भस्म देते हैं, जिसे वे कपाल पर मलते हैं । इसके पश्चात् राजकुमार राजयोगी के चरण छूते हैं ।)

राजयोगी—(सभी राजकुमारों के मस्तक पर बारी-बारी से हाथ रखते हुए)
चिरायु हो, मेवाड़ को यश को उज्ज्वल करो । अहोभाग्य मेरा कि आज मुझे महाराणा जी के साथ राजकुमारों के भी दर्शन प्राप्त हुए । आप लोग आसन ग्रहण करें ।

(सूरजमल, पृथ्वीराज और जयमल चांदी की चौकियों पर बैठ जाते हैं और संग्रामसिंह मृगचर्म पर ।)

महाराणा रायमल—तुम लोग महल से साथ चले थे, किन्तु मार्ग में कहां अटक गए ?

सूरजमल—महाराणा जी, जानबूझकर ही हम लोग आपसे अलग हो गए थे । चाहते थे कि किसी प्रकार हम लोग स्वयं ही अपना भाग्य-निर्णय कर लें ।

महाराणा रायमल—क्या निर्णय किया तुम लोगों ने ?

पृथ्वीराज—यही कि समय स्वयं ही इसका निर्णय करेगा । जिसमें मेवाड़ का भावी महाराणा बनने की क्षमता होगी, वही युवराज-पद प्राप्त करेगा ।

राजयोगी—किन्तु समय का चमत्कार तो देखो, भवानी की प्रेरणा से मेवाड़ के राजकुमारों ने स्वभाग्य का निर्णय कर ही डाला ।

जयमल—क्या निर्णय कर डाला और कब किया ?

राजयोगी—(मुस्कराते हुए) यह भी नहीं मालूम हुआ तुम्हें ? भवानी को साक्षी कर अभी तो तुम सभी ने निश्चय किया है कि महाराणा राय-मलजी के पश्चात् किसके मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट शोभित हो ।

पृथ्वीराज—आप भी विचित्र बात कहते हैं राजयोगी ! इस सम्बन्ध में किसी भी राजकुमार ने एक शब्द भी तो अभी नहीं कहा । राजयोगी के पवित्र और आदरणीय पद पर रहते हुए भी आप मिथ्या भाषण करते हैं ।

राजयोगी—(हंसते हैं ।) हः हः हः ! पृथ्वीराज, भवानी की रहस्यमयी वाणी को सुनने के लिए अन्तर के श्रवण खोलने होने हैं । अन्तश्चक्षुओं को उवाड़कर देखो—जिसे युवराज-पद पाना था, उसने पा लिया ।

सूरजमल—क्या राजयोगी और महाराणा ने मिनकर हमारी अनुस्थिति में ही कुल्ल निर्णय कर लिया है ?

राजयोगी—नहीं सूरजमल, निर्णय तो तुम चारों ने स्वेच्छा से किया है ।

जयमल—आश्चर्य, स्वयं हम ही उसे नहीं जानते ।

संग्रामसिंह—इस रहस्य को स्पष्ट कर दीजिए न राजयोगी जी ।

राजयोगी—तुमने महाराज श्रीवत्स की कथा सुनी है न ?

पृथ्वीराज—हां ।

राजयोगी—उसकी राजसभा में लक्ष्मी और शनि निर्णय कराने गए थे कि उनमें कौन श्रेष्ठ है ?

जयमल—हां ।

राजयोगी—श्रीवत्स ने उनके बैठने के लिए एक स्वर्ण का और एक चांदी का सिंहासन रखवा दिया था और स्वभाववश लक्ष्मी स्वर्ण के सिंहासन पर विराजमान हो गई और शनिदेव चांदी के सिंहासन पर ।

संग्रामसिंह—हां, तब शनिदेव ने महाराणा श्रीवत्स को अपना निर्णय सुनाने की आज्ञा दी थी ।

राजयोगी—और राजा ने कहा था, निर्णय तो आप दोनों ने स्वयं ही कर लिया। शनिदेव स्वेच्छा से चांदी के आसन पर बैठकर और लक्ष्मी को स्वर्णासन पर आसीन होते देकर, लक्ष्मी के श्रेष्ठत्व को स्वीकार कर चुके हैं। इसी प्रकार आज आप लोगों ने स्वेच्छा से आसन ग्रहण किए। राजकुमार संग्रामसिंह मृगचर्म पर बैठे हैं। मृगचर्म पर योगी अथवा राजा ही आसीन होता है। भवानी ने अपने आशीर्वाद की मसि से संग्रामसिंह के भाग्य में राजयोग अंकित कर दिया है।

पृथ्वीराज—(खड़ा होकर) शनिदेव अपना अपमान नहीं सह सके थे। और पृथ्वीराज भी नहीं सहेंगे। वह महाराणाजी और राजयोगी के इस षड्यंत्र को विफल करेगा।

(पृथ्वीराज म्यान से तलवार निकालकर बैठे हुए संग्रामसिंह पर आक्रमण करता है, किन्तु महाराणा रायमल फुर्ती से अपनी म्यान से तलवार निकालकर और अपने स्थान से उठकर पृथ्वीराज के प्रहार को अपनी तलवार पर भेल लेते हैं। सभी राजकुमार खड़े होकर और अपनी तलवार म्यान से निकालते हैं। केवल संग्रामसिंह तलवार नहीं निकालता और शान्त चित्त खड़ा रहता है।)

महाराणा रायमल—धिक्कार है पृथ्वीराज, तुम्हारी इस करतूत पर भवानी भी क्रोध से कांप उठी है। देखो, उनके नयनों से चिनगारियां बरसने लगी हैं। तुमने अपने सहोदर अग्रज पर तलवार का प्रहार कर मनुष्यता को लज्जित करने वाला कार्य किया है, जो वंशनाश को आमंत्रित करने वाला है। कुलकलंकी, बहुत अभिमान है तुम्हें अपने बल पर, अपनी तलवार पर, अपने साहस पर तो निकल जा मेवाड़राज्य की सीमा से। अपनी भुजाओं और तलवार से ही स्वभाग्य का निर्माण कर।

पृथ्वीराज—(महाराणा रायमल के चरण-स्पर्श करके) पृथ्वीराज महाराणाजी की आज्ञा का पालन करेगा। मैं स्वीकार करता हूं कि आकांक्षाओं के आवेश में मैं उन्मत्त हो उठा। अभी तक मेरे प्राणों का तूफान उमड़ रहा है, उसे कहीं मार्ग प्राप्त नहीं होता। मेवाड़ के राज्य-सिंहासन की मैंने

इसलिए चाह की कि मैं अपने प्राणों की रण-लालसा को शान्त कर पाऊं, मेवाड़ की राजपताका को हिमालय के शिखर से रामेश्वरम् तक फहराते हुए देखूं। मेवाड़ी तलवार का पानी खैबर की घाटियों को भी दिखाऊं, किन्तु मेरा वह स्वप्न चूर हो गया। फिर भी मुझे संतोष है कि महाराणा जी ने मुझे बाहुबल से स्वभाग्य-निर्माण का अवसर प्रदान किया है। यह भी अच्छा ही हुआ। आज मैं सर्वथा एकाकी, केवल एक तलवार लेकर मेवाड़ से विदा लेता हूं। किन्तु निवेदन करना चाहता हूं कि पृथ्वीराज कहीं भी रहे मेवाड़ का बनकर रहेगा। सुख के दिनों में उसे कोई भी याद न करना, किन्तु यदि दुर्भाग्य से मेवाड़ पर संकट की घटाएं घिरेंगी और यदि वह जीवित रहेगा तो संकट का साभीदार बनने अवश्य आएगा।

संग्रामसिंह—महाराणा जी, मेरे वीर भाई को मेरे कारण मेवाड़ से निर्वासित होना पड़े, यह मुझे स्वीकार नहीं। संग्रामसिंह की तलवार में कितना बल है यह मालवा, गुजरात और दिल्ली की विदेशी सत्ताएं अनेक बार आजमा चुकी हैं और यह भी सत्य है कि पृथ्वीराज का पराक्रम संग्रामसिंह से कम नहीं है। यदि हम दोनों कंधे से कंधा भिड़ाकर मेवाड़ की राज्य-लक्ष्मी के प्रहरी बन सकते तो इस देश का सौभाग्य था, किन्तु न जाने किस कारण सूरजमल जी ने आकर हम भाइयों में राज्यलिप्सा जाग्रत कर दी। इस कुल-कलह की सर्वभक्षी ज्वाला को शान्त करने के लिए संग्रामसिंह युवराज-पद परित्याग करने का संकल्प करता है। पृथ्वीराज मेवाड़ से विदा हो इससे पहले वह भी यहां से विदा हो जाएगा और अज्ञातवास करेगा। किन्तु वह यह भी विश्वास दिलाता है कि अपने देश की सुरक्षा के लिए जब भी उसकी भुजाओं की और उसके मस्तक की मांग होगी वह उपस्थित हो जाएगा।

(संग्रामसिंह महाराणा रायमल के चरण छूता है—महाराणा रायमल की आंखों से आंसू बह पड़ते हैं।)

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—चित्तौड़दुर्ग में सूरजमल के प्रासाद के सामने वाटिका ।
समय—प्रभात । ज्वाला संचित सुमनों की चंगेरी सामने रखे हुए माला बना रही है । वाटिका में कोयल एवं अन्य पक्षियों की मधुर ध्वनियां गूंज रही हैं । प्रभातकालीन रवि-रश्मियां ज्वाला के मुख-मंडल पर पड़कर उसकी कांति को अधिक चमका रही हैं । इसी समय तारा प्रवेश करती है । दोनों ही राजकुमारियां राजस्थान के अप्रतिम रूप-लावण्य का सुन्दरतम उदाहरण हैं । प्रभातकाल में खिलने वाले शतदल की भांति उनके आनन प्रफुल्लित हैं । फिर भी जिस प्रकार सरोवर में आकाश में छा जाने वाले बादलों की टुकड़ियां प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार उनके नयनों के आकाश में एक चिन्ता की छाया-सी आभासित हो रही है ।)

तारा—मेवाड़ के जीवन-कानन की प्रचण्ड ज्वाला को तारा नमस्कार करती है ।

(ज्वाला आंखें उठाकर तारा को देखती है ।)

ज्वाला—मेवाड़ के भाग्याकाश में नवोदित तारा का ज्वाला स्वागत करती है ।
आओ ।

(यह कहकर ज्वाला अधबनी माला चंगेरी में डालकर उठ खड़ी होती है ।)

तारा—नाम है ज्वाला और काम है माला बनाना ।

ज्वाला—ज्वाला के हाथ में फूलमाला देखकर आश्चर्य होता है तारा को !

तारा—हां, आश्चर्य तो होता ही है, क्योंकि सुना है तलवार चलाने में ज्वाला पुरुषों के भी दात खट्टे करती है ।

ज्वाला—ठीक है, तलवार चलाना तो राजपूतों के लिए बच्चों का खेल है । इसे तुम भी जानती हो । तुमने भी यह खेल खेला है और खेलते रहने की साध तुम्हें भी है, किन्तु यह भयानक खेल जीवन के सम्पूर्ण रस को आत्मसात् कर ले, यह भी तो ठीक नहीं है । नारी के जीवन में कहीं न कहीं कोमल भावनाओं का स्थान होना चाहिए ।

तारा—(मुस्कराती हुई) तो अब कैसा खेल खेलना चाहती हो, जिसमें फूलमाला का विशेष महत्व रहता है ?

ज्वाला—फूलमाला से अनेक खेल खेले जाते हैं । किसीके हाथ में फूलों की माला देखकर कोई उसके अन्तरतम का रहस्य नहीं जान सकता । फूलों से वरमाला बनती है जो दो जीवनों को चिरसंगी बनाती है; फूलों से जयमाला बनती है जो वीर पुरुषों के गले में पड़ती है, फूल समाधि पर भी चढ़ाए जाते हैं और देवता को भी अर्पित किए जाते हैं । ज्वाला किस-लिए फूलों की माला बना रही है, क्या इसे तुम जान सकती हो तारा ?

तारा—अपने अनन्यतम प्रियतम को पहनाने के लिए ।

ज्वाला—(मुस्कराकर) तारा, ज्वाला के जीवन में किसी प्रियतम का आगमन अभी तक नहीं हुआ । (चंगेरी में से एक चम्पा का फूल उठाकर बेती हुई) ज्वाला इस चम्पा के फूल की भांति अपनी गंध से पागल कर देने वाली है, किन्तु किसी भ्रमर को उसके पाम आने का साहम नहीं हो सकता । एक बेचारे दिल्लीपति ने दुस्साहस किया था, किन्तु उसे भी मुह की खानी पड़ी । प्रेम का मधुर खेल खेलना ज्वाला के भाग्य में नहीं है, वह तो अपने नाम के अनुरूप दसों दिशाओं में लपटें उठाने का कार्य करना चाहती है ।

तारा—किन्तु क्यों ? तुमने अभी तो कहा था, नारी के जीवन में कोमल भावनाओं का स्थान होना चाहिए । नारी स्वभावतः कोमल और स्नेहमयी

होती है। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी तरह तारा ने भी अपने हाथ में शस्त्र पकड़े हैं, किन्तु वह इसे नारी का स्वाभाविक धर्म नहीं मानती।

ज्वाला—मैं भी नहीं मानती, किन्तु चाहने पर भी क्या मनुष्य सतत स्वाभाविक पथ पर चल सकता है ? मैं तुम्हारे हृदय की दुर्बलता को कुछ-कुछ जान सकी हूँ। मेवाड़ के राजमहल की बन्दिनी बनकर जो यह वन की मृगी रह रही है, इसका भी कारण कुछ-कुछ मेरी समझ में आ रहा है।

तारा—ज्वाला, तारा का जीवन अभी बन्धन से बहुत दूर है, यद्यपि उसकी धारणा है कि सरिता की भांति नारी के जीवन पर किनारों का बन्धन होना चाहिए। फिर भी तारा ऐसी परिस्थितियों में से गुजर रही है कि उसे रुकना या बंध जाना स्वीकार नहीं हो सकता। राजकुमार पृथ्वीराज के कहने से यद्यपि पिताजी ने चित्तौड़ के महाराणा का आतिथ्य स्वीकार किया है किन्तु मैं तो चाहती हूँ कि जल्दी-से-जल्दी राजमहल के बन्दीगृह से हमारे जीवन को मुक्ति प्राप्त हो।

ज्वाला—क्या राजकुमार पृथ्वीराज से तुम्हारे स्वागत-सत्कार में कोई त्रुटि रह गई है ?

तारा—तारा किसीका सत्कार प्राप्त करने के लिए नहीं आई। वह संघर्षों में रहना पसन्द करती है, उसे निश्चेष्ट जीवन अप्रिय है। वह पुनः संघर्षों के कंटीले पथ पर जाना चाहती है।

ज्वाला—किन्तु जब सौभाग्य स्वयं ही तुम्हारे चरणों पर न्योछावर होना चाहता है तब संघर्षों को मोल लेने की आवश्यकता ही क्या है ?

तारा—तारा किसीकी कृपा का दान नहीं चाहती और इसीलिए उसने निश्चय किया है कि वह चित्तौड़ दुर्ग से आज ही विदा ले लेगी।

ज्वाला—मैं तुम्हारे निश्चय का मूल कारण जानती हूँ तारा।

तारा—क्या ?

ज्वाला—यही कि तुम्हारी अहम् कहीं भी द्वितीय स्थान स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

तारा—क्या तात्पर्य है तुम्हारा ?

ज्वाला—यही कि जिसे तुमने अपने हृदय का सम्राट् बनाया है, वह मेवाड़ का युवराज-पद प्राप्त नहीं कर सकता ।

तारा—किन्तु तारा को मेवाड़ के युवराज-पद से क्या प्रयोजन ?

ज्वाला—युवराज-पद से न सही, पृथ्वीराज से तो है । छिपाती क्यों हो, कस्तूरी की सुगन्ध एवं प्रीति का पागलपन क्या कभी छिपाए छिपता है ? वह पवन के वाहन पर आरूढ़ हो दसों दिशाओं को अपने अस्तित्व का परिचय देता है ।

तारा—किन्तु तुम प्रीति के रहस्य को क्या जानो ? तुमने तो सम्भवतः आज तक प्यार का तिरस्कार करना ही जाना है ।

ज्वाला—जो तिरस्कार करने योग्य प्यार होता है उसका तिरस्कार करना ही पड़ता है । तुमने भी तो लालपठान की लालसाओं का तिरस्कार किया है । यह मत समझो कि ज्वाला के हृदय में प्रेम और स्नेह पाने की तृष्णा नहीं है—लेकिन वह करे क्या ? उसने जबसे होश सम्भाला है, अपने सामने शवों के ढेर और रक्त की अजस्र वर्षा ही देखी है । रक्त-समुद्र में जीवन-नैया खेते रहना ही उसका जीवन बन गया है ।

तारा—रक्त की वर्षा हो, राजपूतनी के प्राणों को पुलकित करे, इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं, किन्तु रक्तवर्षा का उद्देश्य केवल हिंसक प्रवृत्ति की संतुष्टि नहीं होना चाहिए । कठोर कार्य के पीछे भी मंगल परिणाम की अभिलाषा आवश्यक है ।

ज्वाला—हत्या मनुष्यता का उच्च गुण कभी नहीं रहा, चाहे वह सद्दुद्देश्य के लिए हो अथवा स्वार्थ-साधन के लिए । किन्तु वहिन, कसाई बने बिना संसार के कसाइयों से रक्षा भी नहीं की जा सकती । नारी होकर तारा और ज्वाला ने जो शस्त्र पकड़े हैं; जिन हाथों में मेंहदी रचनी चाहिए, उन्हें जो रक्त से रंगा है; जिन प्राणों में प्रीति के सपने पलने चाहिए, उनमें रक्त की पिपासा पाली है, सो किसलिए ? भगवती पार्वती को कराला काली का रूप धरना पड़ा, सो किसलिए ? किसी मंगलमय उद्देश्य के लिए ही न ?

तारा—मैं तो इस सम्बन्ध में तुमसे सहमत हूँ ।

ज्वाला—महमत हो, किंतु हिंसा का खेल बहुत ही भयानक है और नारी जब अपनी स्वाभाविकता को त्यागकर इस भयानक खेल में भाग लेती है, तब उसकी भयानकता का अंत नहीं मिलता । ज्वाला के प्राणों में जो महानाश का तांडव चल रहा है उसे कोई नहीं जान सकता । आज रक्त के सागर में सम्पूर्ण चित्तौड़गढ़ विलीन हो जाए, तब भी ज्वाला की तृष्णा शान्त नहीं होगी ।

तारा—राजपूतों के गौरव के प्रतीक चित्तौड़दुर्ग ने क्या अपराध किया है ?

ज्वाला—उसकी चट्टानी दीवारों की भांति उसके स्वामियों के हृदय कठोर और संकुचित है । महाराणा कुम्भा द्वारा स्थापित कीर्ति-स्तम्भ की ऊंचाई की भांति ही अस्वाभाविक रूप में उनका अहम् ऊंचा है । वे मनुष्य नहीं, अपने आपको मनुष्येतर मानते हैं । क्या महाराणा रायमल, क्या राजकुमार संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल, क्या मेवाड़ की महारानियां भालारानी एवं शृंगारदेवी, क्या राजकुमारियां, सबका विश्वास है कि उनका व्यक्तित्व वीरता, पावनता और पुण्य की सीमा-रेखा है, और उनकी धारणा है कि ससार के शेष व्यक्ति अकिंचन हैं, तुच्छ हैं ।

तारा—क्षमा करना बहन, क्या स्वयं तुमपर यह बात लागू नहीं होती ? तुम भी संसार में द्वितीय स्थान स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हो ?

ज्वाला—तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है; मेरी काया में भी तो सूर्यवंशी रक्त प्रवाहित है । भगवान् राम को भले ही अपने आदर्श जीवन का अभिमान न रहा हो, किन्तु उनके वंशज तो राम के वंशज होने के कारण अपने आपको अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ मानते हैं । वे कहीं भी अपने लिए द्वितीय स्थान स्वीकार नहीं करते, ना ही करेंगे ।

तारा—शेष राजपूत भी इस स्वाभिमान की बीमारी से मुक्त नहीं हैं । कोई अपने आपको राम का, कोई कृष्ण का वंशज मानता है, तो कोई अग्निदेव का पुत्र । परिस्थितिवश दो-चार सौ वर्ष से कुछ राजपूत राजवंश मेवाड़ के गहलोतों का नेतृत्व स्वीकार करने को बाध्य हुए हैं, किन्तु उनकी

आत्मा ने अहम् का समर्पण नहीं किया है। राजपूतों के संगठन में एक-प्राणता नहीं है और वह बालू के कणों की भांति बिखर जाते हैं। भारत की रक्षा करने का उत्तरदायित्व जिन्होंने सम्भाला था वे परस्पर विभाजित हैं, अतएव उनका बल किसी काम में नहीं आता ; अपितु आत्मनाश का कारण बना हुआ है। आज पिता के हृदय में पुत्र छुरा भोंकता है और भाई पर भाई तलवार तानता है।

(तारा जिस समय अन्तिम वाक्य कह रही है, सूरजमल घायल स्थिति में प्रवेश करता है।)

सूरजमल—हां, भाई पर भाई ने कायरतापूर्ण प्रहार किया है।

तारा—किस भाई ने, किस पर ?

ज्वाला—तुम घायल कैसे हुए दादा भाई ?

सूरजमल—पृथ्वीराज की तलवार ने सूरजमल पर आघात किया है। गत रात्रि को महाराणाजी की आज्ञा से हम चारों राजकुमार ; मैं, संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल भवानी के मन्दिर में राजयोगी से युवराज-पद का निर्णय कराने के हेतु एकत्र हुए थे। राजयोगी ने संग्रामसिंह के पक्ष में निर्णय दिया तो पृथ्वीराज ने उत्तेजित होकर संग्रामसिंह पर आक्रमण कर दिया।

तारा—उनका भी हृदय राजलिप्सा में उन्मत्त होकर विवेक को भूल गया ?

ज्वाला—फिर क्या हुआ दादा भाई ?

सूरजमल—संग्रामसिंह ने स्वेच्छा से युवराज-पद को तिलांजलि दे दी। तब मन्दिर के बाहर आकर मैंने कहा, 'अब मेवाड़ का भावी महाराणा सूरजमल ही है और न्यायतः अधिकार भी सूरजमल का है।' बस इसी बात पर उत्तेजित होकर पृथ्वीराज मुझपर दूट पड़ा। उसने कहा, 'पृथ्वीराज पिता की आज्ञा मानकर मेवाड़ से निर्वासित होना स्वीकार करता है, किंतु इस बात का भी प्रण करता है कि सूरजमल मेवाड़ की गद्दी को अपवित्र नहीं करने पाएगा। और सच पूछा जाए तो वास्तविक अपराधी सूरजमल है। इसीने हम भाइयों में मुकुट का मोह जाग्रत किया है और

परस्पर प्रतिद्वन्द्विता करने को बाध्य किया है। पृथ्वीराज इस अपराध का दण्ड देगा।'

तारा—दुर्भाग्य भारत का कि बाप्पा रावल के वंशज कुरुवंश के पदचिह्नों पर चल पड़े हैं। मैं पूछती हूँ, महाराणा बनने की ऐसी लालसा इन सबको क्यों है? जो महाराणा नहीं है, वह क्या मनुष्य ही नहीं है? सूरजमलजी, किसलिए आप लोग भूखे कुत्तों की तरह राज्यरूपी हड्डी के टुकड़े के लिए परस्पर लड़ते हैं?

सूरजमल—क्या यह बात भी एक राजपूत बाला को समझानी पड़ेगी? राजपूत अपने अधिकार और सम्मान के लिए अन्तिम क्षण तक संघर्ष करता है। तुम्हीं बताओ तारा, कि तुम्हारे पिता राव सूरतान टोडादुर्ग को पुनः प्राप्त करने के स्वप्न को तिलांजलि देकर हाथों में तलवार के स्थान पर हल क्यों नहीं पकड़ लेते? सूरजमल के शरीर पर पृथ्वीराज ने आघात किया है वह उसके प्राणों में बिंध गया है। पहले हो सकता था कि सूरजमल मेवाड़ के सिंहासन पर आसीन होने की लालसा को अपने हृदय से निकाल देने में सफल हो जाता, किन्तु इस आघात ने उसे नए ही मार्ग पर आरुढ़ कर दिया है। अब मेवाड़ के राजसिंहासन को प्राप्त करना उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहेगा, चाहे उसे इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए राक्षस ही बनना पड़े।

ज्वाला—दादा भाई, मेरे प्राणों को आज वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त हुई और मुझे पूर्ण शान्ति तभी मिलेगी जब उदाजी की संतानों का अपमान करने वाले उनसे अपने जीवन की रक्षा की याचना करेंगे।

तारा—बहिन, तुम्हारे मुंह से ये बातें सुनकर मेरे चित्त को बहुत क्षोभ हुआ है और सूरजमलजी, आप भी विवेक से काम लीजिए। राजपूत क्षणिक उत्तेजना में आकर ऐसा संकल्प कर बैठता है जिससे केवल उसकी ही नहीं अपितु उसके वंश और देश की अपकीर्ति होती है। हो सकता है कि किसी नादानि में आकर किसीने तुम्हारा अनादर किया हो, किन्तु एक व्यक्ति के अपराध का दण्ड सारे देश को देना उचित नहीं। आप वीर हैं, पुरुषार्थी हैं,

मेवाड़ के गौरव को अमर रखने में आप सहायक बन सकते हैं, किन्तु यदि रक्षक ही भक्षक बन जाएगा तो मेवाड़ के सम्मान की रक्षा कैसे हो सकेगी ?

ज्वाला—तारा, आदर्शों की दुहाई देकर तुम पृथ्वीराज के मार्ग को निष्कण्टक बनाने में सफल नहीं हो सकोगी। मेवाड़ के सिंहासन पर अन्यायपूर्ण अधिकार जमाने वालों के दंभ को पददलित किए बिना अब ज्वाला और सूरजमल को शान्ति नहीं मिल सकती।

सूरजमल—हां, मैं जानता हूं, इस समय सूरजमल की शक्ति सीमित है, किन्तु राजपूत साधनों के अभाव में संकल्प से विरक्त नहीं होता। हमें जंगल-जंगल भटकना पड़ेगा और कठिन संघर्षों के बाद भी हम अपने संकल्प को पूरा कर ही लेंगे, इसका भी कोई ठिकाना नहीं। किन्तु हमारा यह दृढ़ निश्चय है कि हम मेवाड़ भूमि में प्रत्येक क्षण भूकम्प जैसी स्थिति बनाए रखेंगे, जिससे मेवाड़ की छाती पर खड़े ये ऊंचे-ऊंचे राजप्रासाद खंडहर बन जाएंगे।

तारा—इस विनाश के खेल को खेलने से क्या मिलेगा तुम्हें ? उत्तेजना के नशे में राजपूत को तर्क से समझाया नहीं जा सकता। मेवाड़ में भवानी के मंदिर में गत रात्रि को जो मनुष्यता को लज्जित करने वाला दृश्य उपस्थित हुआ है उससे होने वाली हानि की अभी आप कल्पना नहीं कर सकते। भगवान् न करे कभी तुम्हारे इस संकल्प का एक अंश भी पूर्ण हो। यदि हुआ, तो समझो, मेवाड़ नहीं, सारे भारत का सर्वनाश निकट आ जाएगा। जहां तक मुझसे सम्भव होगा, मैं राजकुमार पृथ्वीराज का तुमसे संघर्ष रोकूंगी, किन्तु यदि मेवाड़ के गौरव को धूल में मिलाने का यत्न किया तो मेरा भी यत्न होगा कि पृथ्वीराज की तलवार मेवाड़ की ढाल बने।

ज्वाला—किन्तु पृथ्वीराज की ओर से प्रण करने या चुनौती देने का अभी तुम्हें अधिकार नहीं है तारा।

तारा—तारा पृथ्वीराज से भिन्न नहीं है, संसार भर के सामने यह स्वीकार करने को वह प्रस्तुत है। पिताजी एवं मेरी प्रतिज्ञा हम दोनों के मध्य

खड़ी होकर हमारे शरीरों को अलग रखेगी, किन्तु अन्तर जगत् के रंगमंच पर शिव और पार्वती की भांति हम एक हैं। मैं अन्तिम बार सूरजमलजी एवं बहिन ज्वाला से मेवाड़ के गौरव के नाम पर, बाप्पा रावल, समरसिंह, चूड़ावत, लाखा, पद्मिनी, हमीर और कुम्भाजी जैसे महाप्राणों के नाम पर प्रार्थन करती हूँ कि अपने मस्तिष्क से मुकुट के मोह को निकाल दें और मनुष्य बनने का यत्न करें। बस, यह कहकर मैं विदा लेती हूँ, क्योंकि मुझे भी इसी क्षण मेवाड़ के राजमहल से प्रस्थान करना है।

(तारा का प्रस्थान)

ज्वाला—(अट्टहास करती है।) हः हः हः, तारा और पृथ्वीराज शिव और पार्वती की भांति एक हैं, हः हः हः।

सूरजमल—इसमें हंसने की क्या बात है ?

ज्वाला—यही तो तुम नहीं समझे दादा भाई ! तारा वह हड्डी का टुकड़ा है जिसके लिए हिसक भूखे कुत्तों में भी युद्ध हो सकता है। तुम अपनी अभिलाषा को प्राणों में पाले हुए तमाशा देखो। मैं यत्न करूंगी कि तुम्हें शस्त्र भी न पकड़ना पड़े और तुम्हारा संकल्प पूरा भी हो जाए।

सूरजमल—यह कैसे सम्भव है ?

ज्वाला—सम्भव है, और मैं सम्भव करके दिखाऊंगी। तारा के सुन्दर रक्त-मांस के पिंड के लिए भाई-भाई की तलवारें न टकरा दूँ, तो मेरा नाम ज्वाला नहीं। विद्युत्-रेखा की भांति एक योजना मेरे मस्तिष्क में चमक पड़ी है। अन्दर चलो, मैं तुम्हें भी अवगत करा दूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—एक गुफा। समय—रात्रि। गुफा के एक पार्श्व की एवं पीछे की दीवारें दिखाई देती हैं जो चट्टान में से काटकर बनाई जान पड़ती हैं। पीछे की दीवार दूसरे पार्श्व की तरफ मंच की चौड़ाई के अन्त तक

चली गई है, जिससे जान पड़ता है कि गुफा इस तरफ दूर तक चली आई है। पीछे की दीवार में मंच की चौड़ाई के बीच एक द्वार है। उस द्वार से दिखाई देता है कि गुफा का मुख्य भाग अन्दर की तरफ भी है। द्वार के दोनों ओर दो छिद्र हैं जिनमें से दो लोहे के छड़ बाहर की तरफ को निकले हुए हैं, जिनके छोर पर चिबड़े बांधकर मशालें बनाई गई हैं, जिन्हें तेल छिड़क कर जलाया गया है। द्वार के पास तेल से भरी हुई एक कुप्पी रखी हुई है। गुफा में जहां-तहां कुछ शस्त्र भी रखे हुए दिखाई देते हैं। राजयोगी और संग्रामसिंह प्रवेश करते हैं। राजयोगी की वेशभूषा पहले जैसी ही है, लेकिन संग्रामसिंह एक भोल युवक के समान जान पड़ता है। उसकी कमर में तलवार बंधी है और हाथ में धनुष-बाण एवं पीठ पर तूणीर है।)

राजयोगी—मैं कहता हूं, तुम्हें व्यर्थ ही इतना कष्ट नहीं उठाना चाहिए। यद्यपि तुम चाहते हो कि मेवाड़ के राजकुमारों का पारस्परिक संघर्ष समाप्त हो जाए और इसके लिए तुमने युवराज-पद छोड़कर भगवान् राम के समान त्याग करने का निश्चय किया है, किन्तु सूरजमल, पृथ्वीराज एवं जयमल भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के समान भाई नहीं हैं। जिसके भाग्य में राजयोग है उसे राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण करने से इन्कार नहीं करना चाहिए। नियति के अमिट लेख को मिटाने का यत्न मत करो संग्रामसिंह !

संग्रामसिंह—नियति का लेख अमिट है तो आप मुझे अपनी चाल बदलने के लिए भी क्यों कहते हैं ? नियति को अपनी सामर्थ्य दिखाने का अवसर मिलना चाहिए और मुझे अपना ।

राजयोगी—संग्रामसिंह, तुम नहीं जानते कि तुम्हारी अनुपस्थिति मेवाड़ की प्रजा के लिए क्या अर्थ रखती है। राम के वन-गमन पर जिस प्रकार सारी अयोध्या नगरी आकुल हो उठी थी, उसी प्रकार तुम्हारे चले जाने से चित्तौड़ बेचैन है।

संग्रामसिंह—किन्तु क्या पृथ्वीराज के चले जाने से मेवाड़ में किसी के हृदय को शोक नहीं हुआ ?

राजयोगी—शोक क्यों नहीं हुआ । उसके दुस्साहसी स्वभाव के भी अनेक मेवाड़ी प्रेमी हैं । और ऐसे मेवाड़ी आज भी उसके विपरीत दिनों के साथी बनकर अपना पराक्रम दिखाने का नया क्षेत्र प्राप्त करने के लिए उसी के साथ चले गए हैं ।

संग्रामसिंह—ऐसे कितने मेवाड़ी योद्धा पृथ्वीराज के अनुगामी बने हैं ?

राजयोगी—लगभग पांच सौ ।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज जैसे प्रबल पराक्रमी व्यक्ति के लिए पांच सौ साथी भी बहुत होते हैं । निश्चय ही उसका पुरुषार्थ, उसका दुर्दमनीय आवेश कोई नई हलचल पैदा करेगा । और किसी समय यह हलचल शुभ हो सकती थी, किन्तु इस समय जबकि भारत के सारे राज्यों का एक सूत्र में संगठित होना परम आवश्यक है, पृथ्वीराज का अपने लिए नया राज्य कायम करने का यत्न करना एक समस्या खड़ी कर देगा । किसी छोटे-मोटे राज्य की स्थापना कर लेने से भी उसकी आकांक्षा को संतोष नहीं होगा ।

राजयोगी—सचमुच बात तो यही है । भारत का सम्राट् बन जाने पर भी पृथ्वीराज के उत्तम मस्तिष्क को शान्ति नहीं मिलेगी । और सूरजमल भी पृथ्वीराज से किसी प्रकार कम नहीं हैं । जान पड़ता है, ऊदाजी का प्रेत उसके मस्तिष्क पर सवार हो गया है । दोनों का संघर्ष मेवाड़ की शक्ति को जर्जर कर देगा ।

संग्रामसिंह—कितना अच्छा होता, यदि ये दोनों महाशक्तियां मेवाड़ एवं भारत की गौरव-वृद्धि में काम आ सकतीं ।

राजयोगी—मेवाड़ में रहते तो इन दो अशुभ ग्रहों को वश में रख सकने की कुछ सम्भावना हो सकती ।

संग्रामसिंह—नहीं राजयोगी, मुझे ऐसी आशा होती तो मैं मेवाड़ का परित्याग नहीं करता । मेवाड़ में मेरी उपस्थिति इन अशुभ ग्रहों का शमन नहीं कर सकती । आज मेवाड़ के सामन्तों में कल लोग पृथ्वीराज के समर्थक

हैं; कुछ लोग सूरजमल के और कुछ जयमल के । इसके अतिरिक्त मेवाड़ के पड़ोसी राज्य भी महाराणा कुम्भा द्वारा मेवाड़ की बढाई हुई कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं और वे भी हमारे इस गृह-कलह की ज्वाला को चिर-प्रज्वलित रखने के लिए यत्नशील रहते हैं । मेरे और पृथ्वीराज के मेवाड़ भूमि को छोड़कर चले आने से महाराणाजी जयमल को युवराज-पद प्रदान करना उचित समझते होंगे ।

राजयोगी—हां, उनके हृदय में तुम दोनों भाइयों के लिए प्रशंसा की भावना है, किन्तु जयमल के प्रति उनका विशेष स्नेह सदा से रहा है और इसका कारण महारानी शृंगारदेवी है ।

संग्रामसिंह—मैं जानता हूं, महाराणा इस सम्बन्ध में सदा ही दुविधा में रहते रहे हैं । वह परम्परा एवं न्याय के विरुद्ध कार्य करना पसन्द नहीं करते, लेकिन उससे उनके जीवन की अशान्ति बढ़ती है । शृंगारदेवी शान्त रहने वाली नारी नहीं है । उसके भाई जोधपुर के महाराजा उसके पृष्ठ-पोषक है, वे कुछ न कुछ बखेड़ा करेंगे ही । अतः मैंने महाराणा को इस दुविधा से बचाने के लिए मेवाड़ की राजनीति से अपने आपको अलग कर लिया है । दूसरी बात यह भी है कि मेवाड़ पर दिल्ली को विदेशी सत्ता का रोष किस दिन कौन-सी परिस्थिति खड़ी कर दे, इसका कुछ पता नहीं । मारवाड़ मेवाड़ की उत्तरी सीमा पर प्रथम नाका है । अतः मारवाड़ को मेवाड़ का सहायक रखना परम आवश्यक है । इसीलिए मैंने चाहा कि किसी प्रकार मारवाड़ के महाराणा की पुत्री का पुत्र जयमल मेवाड़ के सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित हो जाए ।

राजयोगी—किन्तु इसके लिए तुम्हें मेवाड़ छोड़ने की आवश्यकता तो नहीं थी ।

संग्रामसिंह—मेरा मेवाड़ में रहना सम्भव हो सकता था । मैं जयमल की दाहिनी भुजा बनकर मेवाड़ की सेवा करने को प्रस्तुत था, किन्तु मेरे अकेले के निश्चय से परिस्थिति सुलभती नहीं, क्योंकि पृथ्वीराज की आकांक्षा जयमल से टकराती और यह संघर्ष किसी दिन मेवाड़ और मारवाड़ के संघर्ष

में बदल सकता था। विदेशी सत्ताएं भी बीच में कूदतीं और उस संघर्ष से मेवाड़ की बहुत हानि होती। अतः मैंने यही उचित समझा कि मैं इस समय अज्ञातवास करूं। आज जयमल के लिए मार्ग साफ हो गया है। मैं उन्हीं भगवान् राम का वंशज हूं जो अपनी माता कैंकेई के मन को प्रसन्न करने के लिए और अपने पिता दशरथ को दुविधा से बचाने के लिए राज-सिंहासन को लात मारकर चले गए थे। दशरथ को भी अपने छोटे बेटे भरत को युवराज मानना ही पड़ा था।

राजयोगी—किन्तु यह उनकी मनचाही इच्छा नहीं थी। और इसी कारण उनके प्राण भी चले गए थे।

संग्रामसिंह—किन्तु मेवाड़ के वर्तमान महाराणा को संग्रामसिंह व पृथ्वीराज दोनों के वनवास से कुछ दुःख तो होगा, लेकिन ऐसा नहीं कि उनके प्राणों पर ही आ बीते। मेवाड़ की शक्ति में जो थोड़ी-सी दुर्बलता दिखाई देगी वह जयमल के नाना जोधाजी के सहयोग से पूर्ण हो जाएगी। मारवाड़ के राठौरों के अतुलित बल-विक्रम की समय ने अनेक बार परीक्षा ली है। ऐसा भी हुआ है कि कभी वे मेवाड़ के शत्रु बनकर भी सामने आए हैं, किन्तु ज्यादातर वे मेवाड़ के अनुयायी रहकर मेवाड़ की सेना के हरावल में ही रहे हैं। वे सदा ही रणभूमि में शंकर के प्रलयंकर गणों की भांति संहारकारी सिद्ध हुए हैं। मैंने बहुत सोचकर देखा है कि जयमल का युवराज बनना मेवाड़ के लिए हितकर ही होगा।

राजयोगी—उदारचेता, धीर, वीर संग्रामसिंह का ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है; किन्तु एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मेवाड़ का हित किसमें है, यह मेवाड़ के महाराणा, महारानियां अथवा राजकुमार नहीं जान सकते, क्योंकि सब संग्रामसिंह की भांति निःस्वार्थ और त्यागी नहीं हैं। इन सबके स्वार्थ टकराते हैं। मेवाड़ का हित मेवाड़ की प्रजा ही समझ सकती है।

संग्रामसिंह—किन्तु मेरा विश्वास है कि मेवाड़ की प्रजा महाराणाजी की आज्ञा को ईश्वरीय आदेश मानती है।

राजयोगी—नहीं संग्रामसिंह, प्रजा राजा की प्रत्येक उचित और अनुचित आज्ञा का पालन करे ही यह आवश्यक नहीं है। प्रजा के वक्षस्थल में भी धड़कने वाला हृदय है। उसके अपने सुख-स्वप्न, अपनी आकांक्षाएं हैं। राजा चाहे राम हो अथवा रावण, उसे ईश्वर का अंश मानना ही चाहिए; ऐसा प्रजा सोचती तो मेवाड़ के सामन्त एवं सैनिक ऊदाजी के शासन के प्रति विद्रोह क्यों करती? महाराणा रायमलजी को भी तो एक दिन तुम्हारी ही तरह अज्ञातवास करना पड़ा था, किन्तु अत्याचारी, पितृहंता, सत्ता-लोलुप और देशद्रोही ऊदाजी से त्राण पाने के लिए प्रजा ने अज्ञातवास से उन्हें खोज निकाला। मेवाड़ की प्रजा के सामने आज ऐसा ही अवसर उपस्थित हुआ है। जयमल को मेवाड़ की पवित्र और गौरवमयी गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित करना.....

संग्रामसिंह—(राजयोगी के वाक्य में जोड़ता हुआ) मेवाड़ के हित में बुरा नहीं होगा। राजयोगीजी, आप तो जानते हैं, एक बार दिवंगत महाराणा लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र चूड़ाजी के जीवन में भी ऐसा ही प्रसंग आया था। उन्होंने भी अपने छोटे भाई मोकल के लिए मेवाड़ की राजगद्दी छोड़ दी थी।

राजयोगी—हां, और मोकल की मां हंसा भी जयमल की जननी शृंगारदेवी की तरह राठौरों की पुत्री थी।

संग्रामसिंह—हां, और अल्पायु मोकल को गोद में लेकर बाप्पा रावल के सिंहासन पर बैठकर मोकल के नाना राव रायमल मेवाड़ के महाराणा बनने का दुस्साध्य स्वप्न देखने लगे थे और नाती की हत्या कर अपनी राज्यलिप्सा को शांत करना चाहते थे।

राजयोगी—किन्तु त्यागी और तपस्वी चूड़ाजी के पराक्रम ने ही अपने अनुज की रक्षा की थी। कवच बनकर शत्रुओं के सारे प्रहारों को उन्होंने विफल कर दिया था और पिता की भांति अपने अल्पवयस्क अनुज पर अपने संरक्षण का हाथ रखकर उसे महाराणा-पद की मर्यादा रखने के योग्य बनाया था।

संग्रामसिंह—मेवाड़ का इतिहास त्याग-तपस्या और तेजस्विता के आख्यानो से भरपूर है। संग्रामसिंह अपने पूर्वजों के महत् कार्यों से अनुप्राणित होकर जीवन-मार्ग पर चलना चाहता है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि गृह-कलह की अग्नि में मेरे प्राणों को झुलसाने के लिए इस समय मुझे राजमहल के ऐश्वर्य और वैभव की ओर मत खींचिए।

राजयोगी—मेवाड़ की प्रजा की आकांक्षा को तुम भले ही ठुकरा दो किन्तु अपनी मां भालारानी की व्यथा को अनुभव कर उन्हें सान्त्वना देने तो पुनः वापस चित्तौड़ जाना ही चाहिए। जिस मां के दो वीर पुत्रों में से एक निर्वासित कर दिया गया हो और एक स्वयं निर्वासित हो गया हो, उसके हृदय पर क्या बीत रही होगी ? यह भी तुम जानते हो कि महाराणाजी को विश्राम के समय में शृंगारदेवी और कुसुम्बा से ही अवकाश नहीं रहता, तब वह भालारानी को सान्त्वना के दो शब्द भी कहेंगे, इसकी आशा नहीं है।

संग्रामसिंह—हां राजयोगी, मैं माताजी की परिस्थिति से कभी-कभी विचलित हो उठता हूं। मुझपर पिताजी कितना ही अन्याय कर लें मैं उसे सह सकता हूं ; किन्तु माताजी के प्रति उनकी उपेक्षा मुझे व्याकुल कर देती है। यह भी मन की एक दुर्बलता है। मां से भी बड़ी एक मां है—हमारा देश। उसके हित के लिए अपनी जननी की दुर्दशा के प्रति मुझे उदासीन बनना ही पड़ेगा। सचमुच मैं मां के कष्ट कम करने में असमर्थ हूं।

राजयोगी—असमर्थ नहीं हो संग्रामसिंह, तुम केवल अपने कर्त्तव्य से मुह मोड़ रहे हो।

संग्रामसिंह—नहीं राजयोगीजी, मनुष्य के कर्त्तव्यों की सीमाएं हैं, यह बात क्या आप जैसे ज्ञानी और साधक को बतानी होगी ? अनेक बार कर्त्तव्यों में भी टक्कर हो जाती है। परशुराम को अपनी मां की हत्या करनी पड़ी, किन्तु धर्म ने उन्हें हत्यारा नहीं कहा। जननी और जन्मभूमि दोनों के हितों में जहां संघर्ष हो, मनुष्य को जन्मभूमि के लिए अपनी जननी के प्रति कठोर होकर भी कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए, क्योंकि जननी

का सम्बन्ध केवल उस अकेले के साथ है और जन्मभूमि का सम्बन्ध विपुल जनसमूह से है। मानवता के व्यापक सिद्धान्त के अनुसार अकेले के लिए एक की बलि देनी पड़ती है। इस समय मेवाड़ का हित इसमें है कि मेवाड़ के सिंहासन के लिए होने वाले सत्यानाशी संघर्ष से संग्रामसिंह अलग रहे।

राजयोगी—और विध्वंसक शक्तियों को हिंसक खेल खेलने का खुला छोड़ दे।

संग्रामसिंह—हां राजयोगीजी, दुष्टग्रहों को सत्पथ पर लाने का जब कोई उपाय नहीं है, तब उन्हें परस्पर टकराने दीजिए। इनकी टक्करों से उत्पन्न होने-वाले विद्युत् प्रकाश में सही रास्ता दिखाई देगा।

राजयोगी—किन्तु मुझे भय है संग्रामसिंह, कि तुम्हारा प्रयोग मेवाड़ के लिए महंगा न पड़े। विदेशी सत्ताओं की आंखों को मेवाड़ राज्य का अस्तित्व शूल बना हुआ है। पूर्व में मालवा, दक्षिण-पश्चिम में गुजरात और उत्तर में दिल्ली की बादशाहतें गिद्धों की तरह निगाहें लगाए हुए बैठी हैं। वे उसे नोंच खाना चाहती हैं। ऐसे समय मेवाड़ के तरुण तेजस्वी पुत्रों के असहयोग एवं गृह-कलह से इन्हें प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

संग्रामसिंह—राजयोगीजी, आप विश्वास रखिए, संग्रामसिंह मेवाड़ की ओर से सर्वदा मुंह मोड़कर नहीं बैठा रहेगा। उसके श्वासों की धड़कनों में प्रत्येक क्षण मेवाड़ के हित-साधन के स्वर बजते रहेगे। जो गाज मेवाड़ के मस्तक को चूर करने के लिए दूटेगी, उसे संग्रामसिंह अपने कलेजे पर भेल लेगा।

राजयोगी—संग्रामसिंह के विवेक पर सबको विश्वास है, किन्तु मेवाड़ की ढाल बनने के लिए भी तो संग्रामसिंह के हाथ में जनबल और शस्त्रबल चाहिए।

संग्रामसिंह—समय पर साधन स्वयं जुट जाएंगे राजयोगीजी, भगवान् राम ने वनवास-काल में भी वानरों की सेना तैयार कर ली। संग्रामसिंह, उन्हीं का वंशज संग्रामसिंह, उनके पदचिह्नों पर चल रहा है। बाप्पा रावल

का उत्तराधिकारी जो आज आपके सामने भील के वश में उपस्थित है, यह निष्प्रयोजन नहीं है। भारत के ये आदिवासी जिन्हें हमने जंगलों में ठेल दिया है, महान् शक्ति के पुंज है। पूज्यतम वीरवर आदि पुरुष बाप्पा रावल ने इनका उपयोग किया था ; मेवाड़ के आड़े वक्त में ये सदा ही काम आए हैं। मैं इनकी ही सेना एकत्र कर रहा हूँ। ईश्वर न करे, मेवाड़ के राजपूत सामंत एवं सैनिक गृह-कलह में फंसकर विभाजित हो जाएं और मेवाड़ के साथ विश्वासघात करें। ऐसे कुसमय में संग्रामसिंह की यह नई सेना अपने रणनाद से दिशाओं को गुंजा देगी।

राजयोगी—तुम्हारी आशा और विश्वास से भरी हुई वाणी सुनकर राजयोगी की चिंता दूर हुई। भवानी का संकेत व्यर्थ नहीं जाएगा संग्रामसिंह, तुम्हें एक दिन मेवाड़ राज्य की जीवन-नैया की पतवार अपने सबल हाथों में थामनी ही होगी। भवानी का पुजारी राजयोगी भवानी की ओर से तुम्हारे सत्संकल्प को आशीर्वाद देता है।

संग्रामसिंह—आपके आशीर्वाद ने मेरे आत्मविश्वास को दृढ़ किया है राजयोगी जी, किन्तु एक बात का वचन मैं आपसे चाहता हूँ।

राजयोगी—बोलो वत्स !

संग्रामसिंह—अभी मेरे अनुष्ठान का एवं मेरा भी पता किसी को न दीजिए। आपसे भी अपने महायज्ञ में कुछ सहयोग लेना चाहता हूँ क्योंकि सर्व-साधारण के हृदय पर धर्मगुरुओं की वाणी अधिक प्रभाव डालती है, इसलिए मैं आपको यहां ले आया अन्यथा मुझे आपसे भी मुंह छिपाना पड़ता।

राजयोगी—मेरा सौभाग्य है कि तुमने मुझे अपने सत्संकल्प का साथी बनाया।

मैं तुम्हारा रहस्य प्राणों के अन्तराल में छिपाकर रखूंगा।

संग्रामसिंह—तो चलिए, भीतर चलिए, आपसे अभी बहुत चर्चा करनी है।

(गुफा के द्वार से दोनों भीतर प्रवेश करते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान—प्रथम अंक के चौथे दृश्य वाला । समय—रात्रि का दूसरा प्रहर । तारा एक शिला पर बंठी हुई गीत गा रही है । इस समय वह रणक्षेत्र में आखेट पर जाने वाले शस्त्रसज्जित राजपूत युवक के वेश में है, किन्तु उसके प्राणों से जो मधुर गीत प्रस्फुटित हो रहा है, उसकी संगति उसकी रणसज्जा से नहीं मिलती ।)

तारा—(गीत)

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती ।

व्यथा के पर्वतों पर तो,
हृदय ने है विजय पा ली,
मिलन की सीढ़ियां सुन्दर,
नहीं मुझसे चढ़ी जातीं ।

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती ।

विरह के गीत गा-गाकर
दिशाओं को किया कंपित,
मिलन के गान गाने में,
विपंची मुग्ध शरमाती ।

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती ।

सुमन चुन विश्व उपवन से
रची माला किसी के हित,
सजन जब सामने आए,
नहीं क्यों हार पहनाती ?

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती ।

(तारा जब अन्तिम छन्द गाती है उस समय जयमल उसके पीछे की तरफ से प्रवेश करता है और सुग्ध होकर तारा के गीत को सुनता रहता है । तारा का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता और वह भी चुपचाप खड़ा रहता है ।)

जयमल—(तारा का गीत समाप्त होने पर) सुन्दर, सरस और मादक ! जैसा रूप वैसी ही सुमधुर वाणी है, किन्तु इस ललित और मादक गीत के साथ इस भयानक, कृत्रिम और छद्मवेश का क्या मेल है ?

तारा—(चौककर शिला पर से उठकर जयमल की तरफ मुंह करके) किन्तु मैं पूछती हूं, मेवाड़ के राजकुमार जयमल के इस समय यहां आकर कष्ट उठाने की क्या संगति है ?

जयमल—तुमको इस समय मेरा यहां आना असंगत और अप्रिय लगा ?

तारा—किसी भी कुमारी के पास परपुरुष का एकान्त स्थान में अर्धरात्रि में अकस्मात् पहुंचना असंगत और अप्रिय भासित होता ही है !

जयमल—किन्तु किसी कुमारी का अर्धरात्रि में निर्जन सरिता-तट पर छद्मवेश बनाकर किसी पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा में गीत गाना क्या भारतीय नारी की पवित्र परम्पराओं के अनुकूल है ?

तारा—तो आप मुझे भारतीय नारी की परम्पराएँ और सीमाएँ बताने के लिए आए हैं ?

जयमल—नहीं ।

तारा—तब आपके आने का प्रयोजन क्या है ? मुझसे आपका क्या सम्बन्ध है ?

जयमल—तुम मेवाड़ के राजमहल में अतिथि के रूप में कुछ दिनों तक रही हो, इसलिए मैं तुम्हारे लिए नितान्त अपरिचित हूं, ऐसी बात नहीं है ।

परिचित व्यक्ति के पास पहुंचने में मुझे क्यों संकोच होना चाहिए था ?

तारा—जानती हूँ, मेवाड़ के सारे ही राजकुमार दुस्साहसी हैं, किन्तु तारा को प्रत्येक व्यक्ति का दुस्साहस अच्छा ही लगे, यह आवश्यक नहीं है। मैं पूछती हूँ आखिर आप यहां किस शुभ उद्देश्य से आए हैं ?

जयमल—मैं आपको मनाकर ले जाना चाहता हूँ ।

तारा—मनाकर, कहाँ ?

जयमल—चित्तौड़गढ़ ।

तारा—क्यों ?

जयमल—आपका जंगल-जंगल भटकना मेरे हृदय को व्यथित करता है ।

तारा—आपकी इस संवेदना के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद । किन्तु मैं पूछती हूँ, तारा के प्रति यह अवांछित संवेदना क्यों प्रकट हुई ?

जयमल—कितनी निर्दय हो तुम, संवेदना तो मनुष्य का धर्म है । राजपूत तो विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं । दूसरों के दुःखों में भागीदार बनकर अपने जीवन को संकट में डाल लेना उनके लिए साधारण-सी बात है । तुम्हारे पिता को एक अत्याचारी विदेशी व्यक्ति ने अपनी बपौती से वंचित किया है, यह बात मेवाड़ के राजकुल को व्यथित करती है । मेवाड़ सदा से ही दीन-दुःखी एवं पीड़ितों का सहायक और आश्रयदाता बनकर रहा है ।

तारा—राजपूत चाहे कितने ही बड़े संकट में हो वह दीन-दुःखी कहाना और किसी के सहारे पर जीवित रहना पसन्द नहीं करता ।

जयमल—किन्तु, तुमने क्या मेवाड़ का आतिथ्य मेवाड़ की सहायता पाने के लिए नहीं स्वीकार किया था ? अब मेवाड़ के आश्रय को छोड़कर तुम्हारा अचानक चला आना मुझे विस्मय में डालता है ।

तारा—मुझे संदेह है कि तुम वास्तव में राजपूत हो ।

जयमल—(कुछ आश्चर्य-भरे रोष के साथ) कहती क्या हो तुम ?

तारा—ठीक ही कहती हूँ । राजपूत होकर तुम राजपूतों की भावना को नहीं

समझते । तारा ने अथवा राव सूरतान ने किसी भी दिन मेवाड़ के महाराणा अथवा राजकुमारों से आश्रय की भीख नहीं मांगी । हमारी तलवार में ताकत होगी तो हम अपनी ही शक्ति से अपनी बपौती का उद्धार करेंगे ।

जयमल—व्यर्थ ही चट्टान से सर टकराते रहने को बीरता नहीं मूर्खता कहा जा सकता है । लक्ष्य तक सरलता से पहुंच सकने का मार्ग जिसके सामने है, उसे दुस्साध्य दूर के मार्ग से जाना समझदारी नहीं है । तुम्हारी कृपा का एक कटाक्ष प्राप्त होने पर मेवाड़ की सहस्र-सहस्र तलवारें बिजली की भांति शत्रुओं के मस्तकों पर टूट पड़ेंगी ।

तारा—अ हः हः हः, कृपा करने वालों को भी किसीकी कृपा का याचक बनना आवश्यक जान पड़ता है !

जयमल—हां तारा, जयमल तुमसे कृपा की भीख मांगने आया है ।

तारा—किन्तु एक क्षण पहले तुम तारा पर और तारा के पिता पर कृपा करने का दम्भ कर रहे थे । मैं पूछती हूं, तुम्हारा कौन-सा रूप सत्य है ?

जयमल—दोनों ही । जयमल के दो व्यक्तित्व हैं । एक व्यक्तित्व है तुम्हारी कृपा के याचक का, दूसरा व्यक्तित्व है मेवाड़ के भावी महाराणा का ।

तारा—अच्छा, तो तुमने अभी से विश्वास कर लिया कि जयमल मेवाड़ का भावी महाराणा होगा । (अट्टहास करती है ।)

जयमल—तुम हंसती हो तारा, किन्तु महाराणाजी ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया है । संग्रामसिंहजी के चले जाने एवं पृथ्वीराजजी के निर्वासन के पश्चात् जयमल के अतिरिक्त युवराज पद को और कौन पा सकता है ? भवानी का आदेश भी व्यर्थ हो गया । तारा, सोचो, मेवाड़ की प्रजा तुम्हारी जैसी दिव्य सौंदर्यशालिनी और तेजस्विनी महारानी को पाकर धन्य हो जाएगी ।

तारा—किन्तु कभी तुमने यह नहीं सोचा कि यदि सचमुच जयमल जैसा कापुरुष बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर आसीन हुआ तो मेवाड़ की प्रजा इसे अपना परम दुर्भाग्य समझेगी और किसी पामर और पापी व्यक्ति

को मेवाड़ के वीर सेनानी महाराणा के पद पर कभी स्वीकार नहीं करेंगे ।

(जयमल का हाथ अनायास ही अपनी तलवार की मूँठ पर जाता है ।)

तारा—जानती हूँ आपके पास तलवार है, लेकिन (म्यान से तलवार निकालकर) तलवार तारा के पास भी है । प्रलोभन से मुझे नहीं पा सके तो यह मत समझो कि तलवार के डर से तारा तुमको आत्मसमर्पण कर देगी ।

जयमल—तारा, तुम्हारे स्थान पर कोई और होता तो मैं तुम्हारे विष-बुभे वचनों का उत्तर देता । मुझे पामर और पापी कहने वाले के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देता ।

तारा—और इस प्रकार संसार में मेवाड़ के एक राजकुमार की न्यायप्रियता और उदारशयता का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित करते ।

जयमल—तारा, सहनशीलता की एक सीमा होती है । तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में जो कोमल भावना है, उसका लाभ उठाकर मेरा अपमान न करो ।

तारा—निश्चय ही सहनशीलता की सीमा होती है । तुम्हारा यह रूप मेरे लिए अब अप्रत्याशित नहीं है । मैंने तुम्हारे लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया, वह बहुत सोच-समझकर किया है । मैंने तुम्हारे प्राणों में फुफकारने वाले वासना के विषधर का जहर चित्तौड़ में रहते हुए भी देख लिया था । मुझे आशा नहीं थी कि तुम मेरा पीछा करते हुए यहां तक आओगे । किन्तु, याद रखो, तुम जैसे जहरीले विषधरों की थूथड़ी कुचल देने की शक्ति तारा में है ।

जयमल—(सवेग तारा का तलवार वाला हाथ पकड़ता हुआ) दुष्ट नारी, तेरी वाणी में शेषनाग के फन से भी अधिक जहर है, किन्तु याद रख, मेवाड़ के युवराज को अपनी अवज्ञा सहने का अभ्यास नहीं है । जिस प्रकार सपेरा भुजंग के जहर के दांत तोड़कर अपनी पिटारी में बन्द कर लेता है, उसी तरह जयमल भी तुम्हें राजमहल में बन्द रखेगा ।

तारा—तो तुम मेरी तलवार छीनकर मुझे बलपूर्वक ले जाओगे ?

जयमल—यदि तुम स्वेच्छा से मेरी सहचरी बनना स्वीकार न करो तो ।

तारा—(कृत्रिम कोमलता लाकर) यही तो मैं तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती थी । धन्य हो राजकुमार, तुम परीक्षा में सफल हुए । नारी, पुरुष में कोमलता और याचकता देखकर मुग्ध नहीं होती । नारी तो शक्ति और पुरुषार्थ की चेरी है । जो नारियां प्रलोभन के जाल में फँसकर रूप का व्यवसाय करती हैं, वे नारीत्व का कलक हैं । तुम मुझे मेवाड़ की भावी महारानी के पद का प्रलोभन देकर नहीं जीत सकते । तारा तो सीता एवं द्रौपदी की भांति पुरुष के पुरुषार्थ के लिए होड़ की वस्तु है । जो इस होड़ में विजयी होगा, वह पुरस्कारस्वरूप तारा को पाएगा ।

जयमल—किन्तु वह होड़ क्या है, जिसमें जयमल के पुरुषार्थ की परीक्षा हो सकती है ?

तारा—मेरा हाथ छोड़ो तो बताऊँ ।

(जयमल हाथ छोड़ देता है ।)

जयमल—बोलो !

तारा—जो अपने पुरुषार्थ से हमारे टोड़ादुर्ग को जीतेगा वही तारा का जीवन-साथी बनेगा ।

जयमल—यह तो कोई कड़ी परीक्षा नहीं है । मैंने तो पहले ही कहा था कि मेवाड़ की सहायता से राव सूरतान अपनी बपौती सरलता से पा सकते हैं । तुम्हीं मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया है ।

तारा—तारा ने आपके प्रस्ताव को न ठुकराया है, न स्वीकार किया है । मैंने तो तारा के पाने का उपाय तुम्हें बता दिया । पहले परीक्षा देनी होगी, पुरस्कार बाद में प्राप्त होगा ।

जयमल—मेवाड़ के गौरव के लिए यह शर्त अपमानजनक है । प्रीत की चौपड़ खेलते हुए मेवाड़ का युवराज अपने वंश के गौरव और सम्मान को भी बाजी पर लगा दे, ऐसा दुष्कर्म वह नहीं करेगा । मेवाड़ का राजकुमार पुरस्कार नहीं चाहता, बल्कि अपनी हृदयेश्वरी के पिता को उसकी बपौती पुरस्कारस्वरूप दे सकता है ।

तारा—अर्थात् मैं तुम्हें अपने हृदय का स्वामी पहले ही स्वीकार कर लू ?

जयमल—निश्चय ही । एक साधारण-से राजा की कन्या मेवाड़ के राजकुमार, बल्कि युवराज के निवेदन की अवहेलना करने का दुस्साहस नहीं करने पाएगी ।

तारा—त्रिलोक का साम्राज्य, कुबेर का धन एवं इन्द्र का वज्र भी राजपूत वाला को अपने प्रण से नहीं डिगा सकता । उसे विश्वास है, उसके प्रण को पूर्ण करने वाला, एक युवक है जो शीघ्र ही अपने अग्रतिम पुरुषार्थ से बिना किसी की सेना की सहायता के उसके स्वप्न को प्रत्यक्ष सत्य करके दिखाएगा । सुनो, तारा जो पुरुष सैनिक के वेश में अभी यहां उपस्थित है, वह उसी युवक के साथ लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अभियान करने के लिए आई है ।

(जयमल तारा का हाथ पकड़कर घसीटने लगता है ।)

जयमल—ऐसी बात है, तब तो विलम्ब नहीं किया जा सकता । जयमल भी किसी भी प्रकार से तुम्हें अपने साथ ले जाने के लिए आया है । तुम्हें इसी क्षण मेरे साथ चलना होगा ।

(तारा बलपूर्वक जयमल के हाथ से अपना हाथ छुड़ा लेती है और तलवार तानती है ।)

तारा—जयमल, तारा को अन्य नायियों की भांति अबला मत समझो । उसने जीवन-भर पुरुषों के साथ रहकर पुरुषों के साथ तलवार का खेल खेला है । तुम जैसे पापी-पामरों से रक्षा करने की शक्ति उममें है ।

जयमल—तो मुझे नारी पर शस्त्र उठाना पड़ेगा । हृदय की प्रत्येक धड़कन में जिसका नाम गूज रहा है, उसके सुकोमल शरीर को तलवार के धारों से विरूप करना पड़ेगा । नहीं, यह नहीं होगा । मैं तुममें हार मानता हूं । लो, मैं अपना मस्तक भुकाता हूं; यदि संसार-भर की कठोरता से तुम्हारे हृदय का निर्माण हुआ है तो काट लो मेरा मस्तक ।

(जयमल मस्तक भुकाता है, किन्तु तारा उसके मस्तक पर लात मारती है ।)

तारा—दूर हो पापी, नराधम, कायर, मेवाड़ के वीर वंश को कलंकित करने वाले !

(जयमल तारा के इस व्यवहार से एकदम उत्तेजित हो उठता है और तारा को टांग पकड़कर भूमि पर पटक देता है। इसी समय एक तीर आकर जयमल के वक्ष में लगता है।)

जयमल—आह !

(जयमल वक्ष में बिद्ध बाण को पकड़कर बैठ जाता है। तारा भूमि से उठकर जयमल के पास बैठती है और उसके तीर को निकालने का यत्न करती है।)

तारा—ओह ! तीर वक्ष में दूर तक घुस गया है। किन्हीं बलवान् हाथों से छोड़ा गया है। राजकुमार जयमल, राजपूत बाला को बलपूर्वक प्राप्त करना काले नाग के फन पर पैर रखना है। मुझे दुःख है कि मेवाड़ के भावी महाराणा पर मेरे किसी हितचिंतक ने घातक प्रहार कर डाला।

जयमल—(टूटे हुए स्वर में) तारा, मुझे सन्तोष है कि इसी जीवन में मुझे मेरे पाप का फल मिल गया। निश्चय ही मुझसे सारी राजपूत जाति को लज्जित करने वाली भूल हुई है। किन्तु क्या करूं, तुम्हारे मादक रूप के आकर्षण ने मुझे पागल कर दिया। मेवाड़ के इतिहास में ऐसा दुष्कर्म सम्भवतः मैंने ही किया है। मुझे क्षमा कर देना।

(जयमल तारा का हाथ पकड़कर उसे तीर निकालने से रोकता है।)

तारा—बहुत दर्द होता है ? साहस करो, उठो, चलो, पाम ही हमारी कुटिया है। पिताजी की सहायता से उपचार का उचित प्रबन्ध कर दिया जाएगा।

(तारा सहारा देकर जयमल को उठाती है और ले चलती है।)

जयमल—(तारा के सहारे चलता हुआ) तारा, तुम अत्यन्त दयामयी भी हो।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—सूरजमल के निवासस्थान के पीछे, भवन एवं प्राकार के मध्य का खुला मैदान । दो राजपूत सैनिकाएं बंदिनी वेश में यमुना को लिए हुए प्रवेश करती हैं । यमुना के हाथों में प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में जो कोढ़ दिखाई देता था, इस समय उसका नाम भी नहीं है । उसके वस्त्र यद्यपि अत्यन्त साधारण हैं, तथापि उनमें उसका मोहक रूप अपनी आकर्षक छटा दिखाता ही है । दूसरी ओर से ज्वाला प्रवेश करती है, जो इस समय मेवाड़ की एक राजकुमारी को शोभा देने वाले भव्य, सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक वस्त्राभूषणों से सज्जित है । सौन्दर्य तो उसे प्रकृति ने प्रदान किया है, किन्तु उसके मुख-मण्डल पर माधुर्य के साथ दृढ़ता भी दिखाई देती है । यद्यपि वह सैनिक वेश में नहीं है तथापि हाथ में तलवार लिए हुए है ।)

ज्वाला—रावला में दादा भाई अपने साथियों से मन्त्रणा कर रहे हैं, इसलिए हमारी राजसभा नहीं जमेगी । (सैनिकाओं से) इसके बन्धन खोल दो और तुम जाओ ।

(सैनिकाएं यमुना के बन्धन खोलकर प्रस्थान करती हैं ।)

ज्वाला—(यमुना से) इतने दिनों से तुम्हारी ओर ध्यान देने के लिए समय ही नहीं पा सकी ।

यमुना—मेरे जीवन के कुछ दिन शेष थे, इसीलिए राजकुमारी को मेरी सुध नहीं आई । और यदि आती ही नहीं, तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी । इस विराट् विश्व में अकिंचन यमुना के जीवन का मोल ही क्या है ?

ज्वाला—नहीं यमुना, ऐसा न कहो । संसार में प्रत्येक जड़-चेतन का अपना अलग महत्व है और मानव प्राणी तो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । कोई

भी व्यक्ति हो, स्त्री हो या पुरुष उसका महत्त्व है, तिस पर तुम तो रूप-लावण्य का पारावार हो। मुझे तो आश्चर्य होता है कि उस दिन तुमने अपने अप्सराओं को लज्जित करने वाले रूप को अत्यन्त वीभत्स क्यों बनाया था ?

यमुना—जिसका जीवन दूसरों की दया पर निर्भर है, उसकी अपनी इच्छा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। वह जीवित रहता है तो दूसरों के लिए, मरता है तो दूसरों की इच्छा पर। जिसके पास वैभव और शक्ति है वह बड़े-बड़े महाप्राणों को इस प्रकार नचा सकता है जिस प्रकार मदारी बन्दर को नचाता है। बेचारी यमुना दिल्लीपति के आदेश को अस्वीकार कैसे करती ?

ज्वाला—सच बताओ यमुना, क्या तुम हृदय से चाहती थीं कि मैं पकड़ी जाती और दिल्लीपति की कुत्सित कामना पूर्ण होती ?

यमुना—चाहती न होती तो उनके षड्यन्त्र में सम्मिलित ही क्यों होती ?

ज्वाला—तुम भूठ बोलती हो।

यमुना—ऐसा समझने का कारण ?

ज्वाला—एक नारी दूसरी नारी को पतन के पथ पर ले जाने वाले षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं हो सकती।

यमुना—यदि वह वास्तव में नारी हो। किन्तु यमुना का नारीत्व तो कभी का समाप्त हो चुका है। पतन जिसका जीवन बन गया है, वह धर्म-अधर्म को क्या समझ सके ?

ज्वाला—किन्तु पतन को जीवन बनाने की आवश्यकता ही क्या है ?

यमुना—मानव अनेक परिस्थितियों का दास बन जाता है; विशेष रूप से नारी, जो प्रकृति से अबला है। नारी के उज्ज्वल जीवन पर कालिमा का एक छींटा भी परिस्थितियों के दबाव के कारण पड़ जाए तो उसे धो सकने का अवसर ससार देता ही नहीं है। समाज पुरुष की अपेक्षा नारी पर अधिक निर्दय है। सब ओर से तिरस्कार पाकर नारी का दुःखी और विद्रोही मन

पुरुष की निष्ठुरता से बदला लेना चाहता है और पुरुष की कुत्सितता को उत्तेजित कर उसकी नग्नता में वह आनन्द लेती है। पुरुष का कोई ठिकाना नहीं, वह सीता को भी कलंक लगाने से नहीं चूका।

ज्वाला—किन्तु, सीता ने संसार की निष्ठुरता का उत्तर पतन के पथ पर अग्रसर होकर नहीं, अपितु तप की कठिन राह पकड़कर दिया था।

यमुना—प्रत्येक नारी सीता नहीं हो सकती। यमुना में सीता बनने की शक्ति नहीं थी। मैं मानती हूँ कि आत्मत्याग, तप और बलिदान अन्याय से युद्ध करने के प्रभावशाली शस्त्र है, किन्तु इनका प्रयोग कर सकना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं। इनका प्रयोग वही व्यक्ति कर सकता है जो मान-अपमान, सुख और दुःख, जीवन और मरण को समान समझता है। यमुना तो साधारण नारी है। पद-पद पर ठोकर खाकर उसने बदला लेने की ठान ली। समाज के जो ठेकेदार माथे पर मानवता का तिलक लगाकर, गर्व से मस्तक उठाए चलते हैं, मैंने उन्हें अपने चरणों की धूल मस्तक पर रखने को लालायित किया है।

ज्वाला—सचमुच सौन्दर्य में अद्भुत शक्ति है।

यमुना—हां, सौंदर्य में शक्ति है, किन्तु निरे सौंदर्य की शक्ति की भी एक सीमा है। सौंदर्य की शक्ति को निस्सीम बनाने के लिए मनुष्य के कल्पनाशील मस्तिष्क ने कलाओं का आविष्कार किया। यमुना ने समाज के दम्भ को चूर करने के लिए नृत्य और गान का सहारा लिया। कठिन साधना की। उसके सौंदर्य और उमकी कला की धूम मच गई। जो नारी समाज में तिरस्कार की अधिकारिणी थी उसके कृपा-कटाक्ष के याचकों की संख्या बढ़ने लगी। एक दिन दिल्लीपति तक कस्तूरी की सुगन्ध के समान, उसके रूप-लावण्य-यौवन एवं कला की कीर्ति जा पहुंची। दिल्लीपति दिल्ली की प्रत्येक श्रेष्ठ और सुन्दरतम वस्तु को प्राप्त न करना चाहे यह कैसे हो सकता है? उन्होंने यमुना को याद किया और यमुना की विजय-यात्रा की यह चरम सीमा थी।

ज्वाला—तब तुम साम्राज्ञी क्यों नहीं बनीं ?

यमुना—यमुना की यही साध तो पूरी नहीं हो सकी । कुछ-कुछ कमी थी यमुना के सौन्दर्य एवं कला में । यमुना दिल्लीपति को इतना मतवाला न कर सकी कि वह इस बात को भूल जाते कि गणिका साम्राज्ञी बनने का अधिकार नहीं रखती । उन्हें इस बात का होश बना ही रहा कि रूप-यौवन और कला मनुष्य के मनोरंजन की वस्तुएं हैं और स्वर्ण इन्हे खरीद सकता है । मैंने अनुभव किया कि मेरी विजय-यात्रा मेरी पूर्ण पराजय थी । शक्ति और वैभव के आगे मुझे नतमस्तक होना पड़ा और मुझे दिल्लीपति की आज्ञा से गुप्तचर का कार्य स्वीकार करना पड़ा ।

ज्वाला—तुम चाहती तो दिल्लीपति की इस आज्ञा को अमान्य कर सकती थीं । तुम्हारा महत्त्व गुप्तचर बनने में नहीं, कला की साधिका बनने में ही है ।

यमुना—किन्तु मनुष्य क्या अपना उपयोग अपने प्रिय स्वप्न-साधन के लिए करने में स्वतन्त्र है ? यदि मैं दिल्लीपति की आज्ञा की अवहेलना करती तो उनकी आसक्ति मुझपर तलवार का प्रहार बनकर टूटती ।

ज्वाला—बहुत मोह है तुम्हें अपने प्राणों का ! नहीं जानती थी कि प्राणों का मोह मनुष्य को अपमान सहते रहने को बाध्य करता है ?

यमुना—केवल प्राणों के मोह के कारण यमुना ने दिल्लीपति की आज्ञा शिरोधार्य नहीं की । कुछ और भी कारण था ?

ज्वाला—क्या ?

यमुना—यमुना देखना चाहती थी कि वह रूप कैसा है, जिसने दिल्लीपति को मेरे बाहुपाश से छुड़ाकर अपना दीवाना बना लिया है ।

ज्वाला—तो बस, तुम मुझे देखना भर चाहती थी । दिल्लीपति के पास पहुंचा देना नहीं ?

यमुना—यदि मुझे वास्तव में दिल्लीपति की आज्ञा माननी होती तो इतनी सरलता से आपकी डोली में बैठकर चली नहीं आती ।

ज्वाला—किन्तु तुमने मुझपर छुरी का प्रहार करना चाहा था ।

यमुना—वह तो केवल अभिनय था, ताकि यदि कोई गुप्तचर के कार्यों को भी

छिपकर देख रहा हो तो उसे इस बात का सन्देह न हो कि मैं अपने कार्य में बेईमानी कर रही हूँ ।

ज्वाला—किन्तु तुमने बेईमानी की क्यों ?

यमुना—दिल्लीपति से बेईमानी करना नारीत्व के प्रति बेईमानी करने से बड़ा पाप नहीं है । दिल्लीपति ने मेरे नारीत्व का, मेरी कला का अनादर किया था और मेरे मन में उनके प्रति क्रोध था । मैं उनसे छुटकारा चाहती थी और छुटकारा पाने का सहज उपाय आपकी बंदिनी बन जाना मुझे मालूम हुआ ।

ज्वाला—(मुस्कराकर) तब मेरा अनुमान ही सच निकला । तुम मुझे पकड़वाना नहीं चाहती थीं । व्यर्थ ही तुमने इतने दिनों तक सत्य पर आवरण डालने का यत्न किया । मुनो सुन्दरी, दिल्लीपति की प्रेयसी, तुम्हारी विजय-यात्रा में ज्वाला बाधा नहीं डालेगी और न तुम्हारे प्राण ही लेगी, अपितु तुम्हें अपनी बहिन के समान मानेगी ।

यमुना—क्या कहा 'बहिन' ! मुझे राजकुमारी ने 'बहिन' कहा । आज मेरे जन्म-जन्मान्तर के पुण्य जाग्रत हुए हैं जो एक मानवी ने मुझे बहिन कहा, अन्यथा सभी मुझे पातकी और समाज का कलंक समझते रहे हैं । एक युग के पश्चात् यह मधुर सम्बोधन मुझे सुनने को प्राप्त हुआ है ।

ज्वाला—ओह, कितनी पुलकित हो उठी हो एक कृत्रिम सम्बोधन से ! मानव हृदय, विशेष रूप से नारी का कोमल हृदय, स्नेह का कितना प्यासा है ! मैंने तुम्हें बहिन इसलिए कहा कि मैं भी तुम्हारे ही पथ पर चलना चाहती हूँ ।

यमुना—(साश्चर्य विस्फारित नेत्रों से ज्वाला को देखकर) स्वर्ग की पवित्र देवी कालिमामय धरती पर पांव रखेगी ?

ज्वाला—हां, तुम तिरस्कार की यातना को जानती हो यमुना ! मेरा तन-मन, रोम-रोम उसी यातना में जल रहा है । मुझे भी प्रतिशोध लेना है ।

यमुना—किससे ?

ज्वाला—मेवाड़ के संकीर्ण हृदय निष्ठुर पाखंड से । मुनो, वर्तमान समाज में

तुम्हें ऊपर उठने को मार्ग नहीं मिल सकता, और इन ऊंचे कहाने वालों से ज्वाला को लड़ना है। इस युद्ध में तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी। बोलो बहिन, करोगी ?

यमुना—आपने मुझे बहिन कहा है। मैं इस नाते को निभा सकूँ ऐसा आशीर्वाद मुझे दो, राजकुमारी जी !

ज्वाला—मैं आयु और अनुभव में तुमसे छोटी हूँ यमुना, आशीर्वाद बड़े देते हैं।

यमुना—आप शक्ति और पद में मुझसे बड़ी हैं।

ज्वाला—शक्ति अनेक प्रकार की होती है। कष्ट देने की शक्ति और कष्ट सहने की शक्ति। कंस में पहले प्रकार की शक्ति थी, तो देवकी में दूसरे प्रकार की। इन्द्र को भी, जिसका आयुध वज्र है, जो महान् शक्तिशाली था, मेनका-रम्भा-उर्वशी आदि की शक्ति का उपयोग करना पड़ा था। बाले, तुम्हें मेरी मेनका बनना होगा ?

यमुना—जीवन का वही अप्रिय खेल मुझे खेलना पड़ेगा ?

ज्वाला—उसे अप्रिय क्यों कहती हो ? काले नाग को जब संपेरा नचाता है तो उसे कितना आनन्द आता है ? पुरुष काले नाग से कम नहीं होता। मेरी यमुना काले नाग के बिल में हाथ डालने का मंत्र जानती है, उसकी निपुणता ने ही मुझे यह प्रस्ताव करने की प्रेरणा दी है। उसने अनेक नागों के विष के दांत तोड़ डाले हैं। अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। एक और खेल सही, बोलो खेलोगी ?

यमुना—खेलूंगी।

ज्वाला—भागकर दिल्ली तो नहीं चली जाओगी, विश्वास दिलाओ।

यमुना—मैं समझती हूँ, आप आंखों के अन्तर के अक्षरों को पढ़ सकने की शक्ति रखती हैं, यदि मुझ पर विश्वास न हो तो पुनः बन्दीगृह में बन्दकर दीजिए।

ज्वाला—पाप और पुण्य दोनों में मेरा साथ दोगी ?

यमुना—पुण्य में साथ दे सकने योग्य पुण्य तो मैंने नहीं किया, हां पाप में साथ अवश्य दे सकती हूं ।

ज्वाला—पाप को पाप समझकर ही ?

यमुना—नहीं, पाप को पुण्य समझकर । बतलाओ, मुझे क्या करना है ?

ज्वाला—महाराणा रायमल की पुत्री आनन्ददेवी ने ज्वाला का अपमान किया है, मैं उसे इसका दण्ड दूंगी ।

यमुना—कैसे ?

ज्वाला—उसके हृदय की शांति को छीनकर, उससे उसका पति छीनकर, उसे उसके पति से अपमानित और तिरस्कृत कराकर ।

यमुना—कौन है उसका पति ?

ज्वाला—सिरोही-नरेश ! उसे तुम्हें अपनी रूप-शिखा का शलभ बनाना होगा । ऐसा दीवाना कि आनन्ददेवी उसके दर्शन के लिए तरस जाए ।

(सूरजमल का प्रवेश)

सूरजमल—ज्वाला तुम यहां हो ? कब से तुम्हें खोज रहा हूं ।

ज्वाला—क्यों, कोई आवश्यक कार्य है ?

सूरजमल—हां, किन्तु !

(इतना कहकर सूरजमल यमुना की तरफ देखता है ।)

ज्वाला—इसकी उपस्थिति में तुम सम्भवतः बात करना नहीं चाहते किन्तु अब यह हमारी सेना की विश्वासपात्र सैनिका है, फिर भी तुम्हारे संकोच को मैं अकस्मात् दूर नहीं कर सकती । (यमुना से) तुम भवन के सामने मेरी प्रतीक्षा करो ।

(यमुना का प्रस्थान)

ज्वाला—(सूरजमल से) अब बताओ, मेवाड़ की राजगद्दी कितनी दूर रह गई है ?

सूरजमल—राजगद्दी कितनी दूर रह गई है, यह तो मैं नहीं जानता । इतना जानता हूं कि राजगद्दी प्रज्वलित ज्वालामुखी का मुख बनने वाली है ।

उस पर बैठ सकने की शक्ति गहलोत-वंश के किसी भी व्यक्ति को प्राप्त हो सकेगी, इसमें मुझे सन्देह है ।

ज्वाला—और तुम्हारी बहिन भी ऐसा तूफान लाने वाली है, जिससे चित्तौड़दुर्ग में भयानक भूकम्प उठ पड़े ।

(एक सैनिक प्रवेश कर सूरजमल को झुककर नमस्कार करता है ।)

सैनिक—अन्नदाता, महाराणा ने आपको स्मरण किया है ।

सूरजमल—महाराणाजी की आज्ञा का पालन पहले होगा । शेष सारे काम बाद में । ज्वाला, हमारी बात अभी अधूरी रहने दो, (सैनिक से) चलो ।

(एक ओर सैनिक और सूरजमल, दूसरी ओर ज्वाला का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पांचवां दृश्य

(स्थान—प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य वाला । कक्ष की साज-सज्जा लगभग उसी प्रकार की । समय—रात्रि । महारानी शृङ्गारदेवी स्वर्णपात्र में कुसुंबा तैयार कर रही है । महाराणा रायमल आते हैं । कमर से खड्ग खोलकर खूंटो पर टांगते हैं । राजमुकुट एवं राजसी पोशाक उतारकर रख देते हैं और शृङ्गारदेवी को कुसुंबा तैयार करते देखकर मुस्कराकर बोलते हैं ।)

रायमल—अपना वही पुराना शस्त्र पेंना कर रही हो और इस कार्य में किसी दासी की सहायता लेना भी महारानी को स्वीकार नहीं है ?

शृङ्गारदेवी—(मुस्कराती हुई) महाराणाजी, कुसुंबा तैयार करना भी एक कला है । मुझे विश्वास है मेरे हाथ का तैयार किया हुआ कुसुंबा महाराणाजी को नया जीवन प्रदान करता है ।

रायमल—जीवन प्रदान करता है अथवा जीवन को बेहोश कर देता है ?

शृङ्गारदेवी—नहीं महाराणाजी, कुसुंबा तो नई चेतना, नया होश मंचारित करता है ।

रायमल—(हंसते हुए) अः हः हः ! तुम्हारी हर बात अनोखी है । कुसुंबा और होश, अग्नि और शान्ति, सिंह और अहिंसा, यौवन और शील, बिल्कुल उल्टी बातें हैं, महारानीजी !

(महाराणा रायमल पर्यंक पर इस प्रकार बैठते हैं कि उनके पैर जमीन पर रहते हैं ।)

शृङ्गारदेवी—मनुष्य को अपने मौलिक रूप में ले जाने वाली वस्तु क्या बेहोश करने वाली कही जाती है ?

रायमल—क्या पशुत्व ही मनुष्य का मौलिक रूप है ?

शृङ्गारदेवी—निश्चय ही महाराणाजी ! (कुसुंबा का पात्र महाराणाजी के आगे एक तिपाई पर रखकर) मनुष्य वास्तव में पशु है और यदि वह पशु ही बना रहे तो सुखी रहे ।

रायमल—तुम तो मनुष्य-समाज की गाड़ी को पुनः आदि युग की तरफ खींच लेना चाहती हो । मनुष्य यदि पशु के समान आचरण करे तो उसे समाज में रहने कौन दे ? ऐसे व्यक्ति को केवल पागल समझा जा सकता है ।

शृङ्गारदेवी—हां, आज का कृत्रिम समाज उसे पागल तो समझेगा ही, किन्तु यदि गम्भीरता से सोचें तो यथार्थ की ओर कदम बढ़ाने में पागलपन की कोई बात नहीं है । मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृतियां, आचार-विचार, धर्म, दर्शन, शासन एवं समाज-व्यवस्थाओं का जो जाल बिछाया है, उसने उसे वास्तविकताओं से, यथार्थता से, उसके मौलिक रूप से कहीं दूर फेंक दिया है । मनुष्य सदा ही किसी नशे में रहता है और नशे की स्थिति में वह जो सोचता है उसे ही सत्य समझता है ।

रायमल—अर्थात् जब वह नशा नहीं करता है तब वह नशे में रहता है ।

शृङ्गारदेवी—यही तो बात है महाराणाजी, मनुष्य निरन्तर ही नशे में रहता है । ज्ञान के स्पर्शमात्र से मनुष्य को नशा हो जाता है । स्वार्थ को लोग पाश-

विक वृत्ति कहते हैं। किन्तु वास्तव में देखा जाए तो स्वार्थ भी एक नशा है जो ज्ञान की मदिरा पीने से होता है। पशु मनुष्य से कम ज्ञानी है, अतः कम नशे में है और कम स्वार्थी है, कम भयानक है।

रायमल—हः हः हः, आज तो तुम बहुत ऊँचे तत्त्वज्ञानी की बातें कर रही हो, जान पड़ता है कुसुंबा की मात्रा अधिक ग्रहण की है।

शृङ्गारदेवी—महाराणाजी, मेरी मा ने जन्म-घुट्टी के साथ ही मद पिलाया है, अथवा यों कहिए, मेरी मां के दूध में जो मादकता थी उसका नशा मेरे रक्त को रात-दिन उत्तेजित करने को पर्याप्त है और मेवाड़ का राजवंश जो आदर्शों की दुहाई देता है, वह भी तो उनका वंशानुगत रक्त में प्रवाहित नशा ही है। यह कुसुंबा तो उस नशे को कुछ क्षणों के लिए कम ही करता है। लीजिए न !

(अपने हाथ से शृङ्गारदेवी पात्र उठाकर महाराणा के मुँह से लगाती है और महाराणा एक घूंट पीकर शृङ्गारदेवी को ओर बढ़ाते हैं।)

रायमल—प्रत्येक प्रकार का प्याला हमें साथ ही पीना चाहिए।

शृङ्गारदेवी—(एक घूंट पीकर)—महाराणाजी की कृपा है कि मुझे जीवन के प्रत्येक प्रकार के प्याले पीने में अपनी सहयोगिनी बनाए रखना चाहते हैं, किन्तु चाहने पर भी क्या आप अपने अधिकार का एक अंश भी दे सकते हैं ? और सच पूछा जाए तो आपके अधिकार, आपकी शक्ति और आपका बड़प्पन, ये सब स्वप्नमात्र हैं। आप स्वयं नियमों, परम्पराओं और आदर्शों से जकड़े हुए हैं। जब आप इस कक्ष में आते हैं तभी शृङ्गारदेवी के अस्तित्व का आप अनुभव करते हैं, किन्तु जिस समय आपके मस्तक पर राजमुकुट शोभित होता है, शृङ्गारदेवी आपकी आँखों से ओझल हो जाती है। न्यायकारी, वीर और परोपकारी बनने का नाटक करने का एक नशा आपके मस्तिष्क पर सवार हो जाता है। उस समय शृङ्गारदेवी की इच्छाओं का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

रायमल—(उठकर खड़े होते हैं और कक्ष में एक-दो कदम इधर से उधर और उधर से इधर रखते हुए बोलते हैं।) फिर अतृप्त शृङ्गारदेवी,

तुमने महाराणा रायमल को नशे में रखकर क्या नहीं कराया ! तुम्हारी अभिलाषा थी कि संग्रामसिंह और पृथ्वीराज जैसे परम पराक्रमी पुरुषों की उपेक्षा कर मैं जयमल को युवराज घोषित करूं। प्रकृति ने तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए मार्ग साफ कर दिया। संग्रामसिंह ने स्वेच्छा से अपने उचित उत्तराधिकार को लात मार दी और पृथ्वीराज को अपनी उद्वेगता के कारण निर्वासित होना पड़ा, अतः तुम्हारा जयमल ही युवराज-पद का अधिकारी बन गया है। अब तुम क्या चाहती हो ? अब भी तुम्हारी अभिलाषा अनृप्य है, तो लाओ, जिस पात्र में हम कुसुंबा का पान कर रहे हैं, उसे मेवाड़ के महाराणा के हृदय-रक्त से भर दिया जाए और तुम अपने चिरप्रज्वलित ओठों से उसे पी जाओ। महाराणा के अस्तित्व और व्यक्तित्व को समाप्त कर दो।

शृङ्गारदेवी—(महाराणा का हाथ पकड़कर उन्हें पर्यंक पर बैठाकर स्नेहमय स्वर में) इस महल में आकर महाराणाजी का उत्तेजित होना वर्जित है। शृङ्गारदेवी से हजारों अपराध हुए हैं, इसे वह स्वीकार करती है, किन्तु मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि मनुष्य ने ज्ञान का फल खाया तो उसमें सोचने की शक्ति आई; सोचने की शक्ति आई तो उसमें स्वार्थी, लालसाओं, सत्ताप्राप्ति की आकांक्षाओं की वृत्ति भी आई। मैं पूछती हूँ कि क्या मेवाड़ के महाराणा यह नहीं चाहते कि राजस्थान के सारे क्षत्रिय राजा उनकी छत्रछाया में आएँ ? क्या वह यह नहीं चाहते कि मेवाड़ का भंडा भारत-वर्ष के प्रत्येक प्रदेश में फहराए। आप भूमि पर अधिकार करना चाहते हैं, किन्तु शृङ्गारदेवी तो महाराणा के हृदय पर ही एकाधिकार चाहती है। क्या यह अपराध है ? महाराणा पर एकाधिकार का अर्थ है राज-महल पर शृङ्गारदेवी का एकछत्र शासन। राजमहल पर शासन का अर्थ है जिन व्यक्तियों की उपस्थिति जयमल के जीवन के लिए खतरा है उन्हें निर्वासन।

रायमल—कहती क्या हो शृङ्गारदेवी, अब जयमल के जीवन को खतरा किससे है ?

शृङ्गारदेवी—यही बुद्धि लेकर आप मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठते हैं ?

रायमल—शृङ्गारदेवी, तुम अपनी सीमा को लांघ रही हो। तुम्हें मेरी बुद्धि पर विश्वास नहीं है ? तब चाहती क्या हो ? क्या मैं संग्रामसिंह की भांति तुम्हारे जयमल के लिए राजसिंहासन छोड़कर चला जाऊं ? पति की अपेक्षा तुम्हें पुत्र अधिक प्रिय है, तब फिर संकोच क्यों करती हो, उठाओ खड्ग, करो प्रहार मेरी गर्दन पर। (उठकर स्वयं खड्ग उठाकर शृङ्गारदेवी को देते हैं।) राठौरों की पुत्री ने खड्ग चलाना सीखा है, यह मैं जानता हूँ। मनुष्यों के मस्तकों को काट सकने की निर्ममता भी उसे प्राप्त है।

शृङ्गारदेवी—(महाराणा के पांवों के पास तलवार रखकर) स्वामी, मैं हार मानती हूँ। आपके हृदय को दुःख पहुंचाना मेरा उद्देश्य नहीं है। प्रत्येक मां अपने पुत्र की हितरक्षा के लिए यत्नशील रहती है, यह स्वाभाविक ही है और शृङ्गारदेवी ने जयमल को मेवाड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाना चाहा, तो कोई अपराध नहीं किया। इसी प्रकार यदि कोई मां जिसके पुत्र निर्वासित हो गए हों या किए गए हों, यदि वह प्रतिशोध की भावना से उत्तेजित हो उठे और षड्यन्त्रों का सहारा ले तो यह भी स्वाभाविक ही है। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के चले जाने के बाद जयमल ही मेवाड़ का कुल-दीपक है। इस दीपक की रक्षा करना मेवाड़ के कुल की रक्षा करना है। मैं आपसे केवल इतना कहना चाहती हूँ कि राजमहल की दीवारों के भीतर जो षड्यन्त्र पनप रहे हैं उनके प्रति सावधान होने की आवश्यकता है।

(सहसा तारा का प्रवेश। वह गत दृश्य के समान सैनिक वेश में है। अन्तर केवल इतना है कि उसके वस्त्रों पर जहां-तहां रक्त के निशान हैं और हाथ में रक्त-रंजित तलवार है।)

तारा—राजकुमार जयमल की जीवन-रक्षा के लिए किसी सावधानी की आवश्यकता नहीं है, महाराणाजी ! (इतना कहकर वह महाराणाजी के चरण छूती है।)

रायमल—कौन ? राव सूरतान की पुत्री तारा ! इस समय तुम यहां ? रक्षकों ने रोका नहीं ?

तारा—महाराणाजी, तारा राजमहल के अन्तःपुर में रह चुकी है। उसका कही भी प्रवेश वर्जित नहीं।

शृंगारदेवी—महाराणाजी, तारा का रक्तरंजित तलवार लिए हुए शृङ्गारदेवी के कक्ष में निर्द्वन्द्व आ सकना इस बात का प्रमाण है कि राजमहल षड्यन्त्रों का केन्द्र बना हुआ है। संग्रामसिंह का स्वेच्छा से निर्वासन और पृथ्वीराज का आपकी आज्ञा से निर्वासन, इन षड्यन्त्रों को समाप्त नहीं कर सका है, बल्कि उन्हें और प्रबल कर रहा है।

रायमल—(तारा से) क्या कहती थीं तुम जयमल के सम्बन्ध में ?

तारा—कह रही थी महाराणाजी, कि उनकी सुरक्षा का भार अब भगवान् ने अपने हाथों में ले लिया है।

शृंगारदेवी—कहती क्या है तू ?

तारा—वे एक राजपूत बाला के रूप की ज्वाला के पतंगे बनकर जल गए।

शृंगारदेवी—किस राजपूत बाला के ?

तारा—वह राजपूत बाला आपके सम्मुख उपस्थित है। वह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा अपहरण कर मुझे मेवाड़ के राजमहल में ले आना चाहते थे।

शृंगारदेवी—दुष्टे, मेवाड़ के युवराज की हत्या करके तू जीवित नहीं रह सकेगी।

(शृंगारदेवी फर्श पर पड़े हुए महाराणा के खड्ग को उठाकर तारा पर प्रहार करती है, किन्तु तारा उस प्रहार को अपनी तलवार से रोककर शृंगारदेवी का हाथ पकड़ लेती है।)

तारा—महाराणाजी, तारा ने अनेक तलवारों का पानी देखा है और अनेक तलवार चलाने का दंभ करने वालों का पानी तारा ने उतारा है। आपका क्रोध स्वाभाविक है, क्योंकि आप मां हैं। पुत्र की मृत्यु मां को पागल कर देती है। किन्तु आप यह भी न भूलें कि आप मेवाड़ की

महारानी हैं और यदि महारानी न भी होतीं, तो राजपूत रमणी तो हैं ही । आप समझ सकती हैं कि कोई उद्धत युवक किसी राजपूत कुमारी की पवित्रता पर आक्रमण करे तो उसका परिणाम क्या हो सकता है ?

रायमल—तो जयमल ने तुमपर कायरतापूर्ण आक्रमण किया था ?

तारा—हां महाराज !

रायमल—तो तुमने स्वयं जयमल की हत्या की ?

तारा—नहीं महाराणाजी, मेरे पिता के बाण ने राजकुमार के प्राण ले लिए ।

शृंगारदेवी—राव सूरतान का यह दुस्साहस मेवाड़ के महाराणा को वर्दाश्त नहीं करना चाहिए । एक साधारण-सा राजा मेवाड़ के युवराज पर घातक प्रहार करे और महाराणाजी की भृकुटियों में ज़रा-सा भी बल न आए, यह आश्चर्य की बात है । मैं कहती हूँ, राव सूरतान एवं उसकी पुत्री को जीवित ही दीवार में चुना देना होगा ।

तारा—मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं । यदि मेवाड़ के न्यायशास्त्र में मनुष्यता का कोई मूल्य नहीं, नारी की पवित्रता का कोई सम्मान नहीं, राजपूती परम्पराओं का आदर नहीं, तो महाराणाजी, आप अपनी परमप्रिय महारानीजी की आज्ञा का पालन कीजिए । किन्तु मुझे विश्वास है कि महाराणा मेवाड़ के यश को कलकित नहीं करेंगे ।

शृंगारदेवी—तुम्हारा न्यायप्रियता का दुहाई देना व्यर्थ है । मेवाड़ के हाथों में राव सूरतान और तुम जैसी नारियों को दण्ड देने की शक्ति है ! क्या तुम समझती हो, मेवाड़ निस्तेज हो गया है ? उसे षड्यन्त्रकारियों और शत्रुओं को अपनी करनी का फल चखाने का बल प्राप्त नहीं है ?

तारा—महारानीजी, मैं मेवाड़ की अजेय शक्ति को जानती हूँ । मेवाड़ में अपने से प्रबल शत्रु को दण्ड देने की भी शक्ति है, किन्तु दण्ड देने का उपयुक्त कारण होना चाहिए । महारानीजी, आप भूल गई हैं कि जब दिल्लीपति ने ऊदाजी की पुत्री ज्वाला से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना चाहा था तो गहलोत-वंश की राजकुमारी की पवित्रता की रक्षा करने के लिए

सहस्रों मेवाड़ी तलवारों शत्रु का रक्त पीने को चमचमा उठी थीं; वे ही तलवारे क्या अपने आदर्श को, राजपूती परम्परा को भूल जाएगी ? अपराधी महाराणा का पुत्र है, इसीलिए क्या महाराणा मेवाड़ के आदर्श न्याय को तिलांजलि दे देंगे ?

रायमल — नहीं बेटी, पुत्र की मृत्यु से पिता का हृदय भले ही सौ टुकड़े हो रहा हो, फिर भी मेवाड़ का महाराणा अन्याय नहीं करेगा । तुम्हारे पिता ने राजपूती परम्परा का पालन किया है, यदि उस समय वह जयमल पर दया कर देते तो मैं स्वयं उसे फांसी का दण्ड देता । बेटी, मैं तुम्हारे पिता को पुरस्कृत करूँगा ।

शृंगारदेवी—नहीं महाराणाजी, आप होश में नहीं हैं । आदर्शों का नशा पिलाकर तारा आपको उन्मत्त कर रही है । आपमें पितृत्व की जो कोमल भावनाएं हैं उनकी हत्या कर रही है । न्याय भले ही रसातल में जाए, शृंगारदेवी अपने पुत्र के हत्यारों को क्षमा नहीं करेगी ।

रायमल—शृंगारदेवी, तुम्हारा प्रलाप करना स्वाभाविक है किन्तु यदि तुम्हें भी इस समय न्याय के सिंहासन पर बैठा दिया जाए तो तुम भी वही फैसला दोगी जो मैंने दिया है । न्याय के सिंहासन पर बैठने वाले का न कोई पुत्र है न कोई पत्नी, वहां सारे नाते समाप्त हो जाते हैं ।

(इसी समय पृथ्वीराज प्रवेश करता है ।)

पृथ्वीराज—मेवाड़ के महाराणा की जय, मेवाड़ के न्याय की जय !

(महाराणा के चरण स्पर्श करता है ।)

रायमल—मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुमने राजमहल में आने का दुस्साहस क्यों किया ?

शृंगारदेवी—जयमल को अपने षड्यन्त्र का शिकार बनाकर अब मेवाड़ की राजगद्दी हथियाने के लिए चले आए हो ?

पृथ्वीराज—नहीं माताजी, भाई जयमल की मृत्यु से मेरा हृदय भी दुःखी है । जयमल की मृत्यु से मेरे हृदय को जितना दुःख हुआ है, उससे अधिक सन्ताप इस बात से हुआ कि गहलोत-वंश में एक ऐसा पुरुष भी पैदा हुआ,

जिसने राजपूत कन्या के सतीत्व पर आक्रमण करने का यत्न किया। मेवाड़ के राजमुकुट के प्रति पृथ्वीराज का अब रत्ती भर भी मोह नहीं है। उसकी भुजाओं में नए राज्य की स्थापना करने की शक्ति है। (महाराणाजी से) पिताजी, आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने मैं नहीं आया हूँ। कुछ क्षणों में ही चला जाऊंगा, किन्तु जीवन के अति महत्वपूर्ण कार्य में अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा ही मुझे यहां खींच लाई है।

रायमल—किस कार्य में ?

पृथ्वीराज—पिताजी, आप जानते हैं कि राव सूरतान ने प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति लालपठान से उनकी बपौती टोड़ादुर्ग जीत कर देगा, वह उनकी पुत्री तारा का पति बनेगा। मैंने अत्याचारी लालपठान के रक्त से तारा की सूनी मांग को रंगकर इसे गहलोत राजवंश की कुलवधू बनाया है, केवल मुट्ठी भर राजपूत साथियों को लेकर आपके इस कपूत ने राव सूरतान की शर्त को पूरा कर दिया है।

रायमल—(पृथ्वीराज को गले लगाकर) मेरे वीर विजयी पुत्र, तुमने मेवाड़ राजवंश के गौरव को चार चांद लगा दिए। मैं अपने पुत्र और वधू को केवल आशीर्वाद ही नहीं देता बल्कि पुत्र पर से निर्वासन-आज्ञा भी वापस लेता हूँ।

(तारा और पृथ्वीराज दोनों सम्मिलित रूप से महाराणा के चरण छूते हैं। शृंगारदेवी सक्रोध देखती रह जाती है।)

[पटाक्षेप]

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

(स्थान—दूसरे अंक के अंतिम दृश्य वाला । समय—प्रभात । पर्यंक के पास चौकी पर कुसुंबा पीने का स्वर्णपात्र रखा हुआ है । एक कोने में वीणा पड़ी है, पर्यंक पर जो सेज बिछी हुई है उससे जान पड़ता है कि रात में उस पर कोई सोया नहीं है । शृंगारदेवी बेचैन स्थिति में कक्ष में घूम रही है । उसके बाल खुले हुए हैं और वस्त्राभूषण अस्तव्यस्त हैं । सहसा वह कुसुंबा के पात्र को उठाकर फेंक देती है, कोने में से वीणा को उठाती है और उसके तारों को इतनी जोर से बजाती है कि वे झनझनाकर टूट जाते हैं । इसी समय ज्वाला प्रवेश करती है । वह शृंगारदेवी के चरण छूती है, किन्तु शृंगारदेवी आशीर्वाद देने के शिष्टाचार का भी पालन नहीं करती । ज्वाला फेंके हुए पात्र एवं वीणा के टूटे हुए तारों को बेखकर कुछ व्यंगभरे स्वर में बोलती है ।)

ज्वाला—काकीजी, नारी का सौन्दर्य, कुसुंबा का नशा और वीणा के सुकोमल सरस एवं मादक स्वर, सभी मेवाड़ के नीरस हृदय महाराणाजी को वश में रखने में असमर्थ रहे ।

शृंगारदेवी—(चिढ़कर) ज्वाला, तू जले पर नमक छिड़कने आई है ?

ज्वाला—महारानीजी, इस कुसुंबा के पात्र एवं वीणा के समान ज्वाला भी निरपराध है ।

शृंगारदेवी—हां, हां सब निरपराध हैं; तारा भी निरपराध है, जो मेरे पुत्र की हत्या कराकर मेवाड़ की भावी महारानी बनी है । पृथ्वीराज निरपराध है, जो भाई की हत्या करने वाली को दुल्हन बनाकर मेरे प्राणों को निरन्तर जलाते रहने के लिए यहां आ धमका है । महाराणाजी निरपराध है, जिन्होंने पुत्र की हत्या कराने वाली को अपनी कुलवधू स्वीकार किया है और पुत्र के हत्यारे को जागीर प्रदान की है । अपराधी तो था केवल जयमल, जिसने एक कुमारी राजपूत बाला को जीवन-संगिनी बनाने का यत्न किया ।

ज्वाला—काकीजी, यह सब नक्षत्रों का खेल है । शास्त्रों ने कहा है कि पुरुष के भाग्य और नारी के चरित्र को कोई नहीं जान सकता ।

शृंगारदेवी—तो क्या नक्षत्रों से शृंगारदेवी पराजित हो जाए ? जिस राजमहल में शृंगारदेवी का एकछत्र राज्य था, उसीमें वह भालारानी की कृपा पर जीवित रहे ?

ज्वाला—महारानीजी, ज्वाला संसार में किसीसे पराजित होना नहीं जानती, किंतु देवताओं पर उसका विश्वास है । जैसा भाग्य होता है वैसी बुद्धि बन जाती है । दुष्ट नक्षत्र प्रबल न होते तो मेरे पिताजी को अपने ही पिता की हत्या कर राजभोग करने की इच्छा क्यों होती ? बाबा जी श्रमृत पीकर तो आए न थे । अन्त में राज्य पिताजी को ही मिलता और उनके पश्चात् दादाभाई सूरजमल ही मेवाड़ के सिंहासन पर आसीन होते । मेवाड़ के सिंहासन पर न काकाजी बैठ पाते और न शृंगारदेवी मेवाड़ की महारानी बनतीं न अपने लाड़ले पुत्र जयमल को उत्तराधिकार दिलाने का यत्न करतीं और जब कुछ पाती नहीं तो कुछ खोने का भी सन्ताप न उठाना पड़ता । काकीजी, संसार में पाना और खोना, सुख और दुःख, राजमहल और भोंपड़ी, सभी कुछ स्वप्न-जगत् की वस्तुएं हैं । किसी वस्तु के पाने में हर्ष क्या, और खोने में विषाद क्या ?

शृंगारदेवी—बड़ी भली अनासक्त परमहंस बनती है ज्वाला ! कभी मां बनी होती तो पुत्र के खोने में मां को कितनी व्यथा होती है, इसे जान पाती ।

ज्वाला—यह तो सच है, ज्वाला अभी मां नहीं बनी । मां बनने का अवसर उसके सामने आया भी, तो उसने ठुकरा दिया, और साधारण मां भी नहीं, दिल्ली के होने वाले बादशाह की मां वह बनती, किन्तु जिस देश में ज्वाला ने जन्म लिया है उसका पुत्र उसीका शत्रु होता । जिस प्रकार गुजरात के बादशाह, जिनके पूर्वज टांक क्षत्रिय थे, अब क्षत्रियों के अस्थिवैरी बन गए हैं; जिस प्रकार मलिक काफूर, जो पहले हिन्दू था हिन्दुओं का घोर विरोधी बन गया था, उसी प्रकार ज्वाला के पुत्र भी होते । मां बन जाना कोई बड़ी बात नहीं है । मां कहलाने का गौरव तो उन्हीं माताओं को होता है जिनकी सन्तान अपनी करनी से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल करती है । किसे पता, ज्वाला कभी ऐसी सन्तान पा सकेगी ? किसे पता उसे भी जयमल अथवा ऊदाजी जैसा ही कोई मनुष्यता को लज्जित करने वाला पुत्र प्राप्त हो जाए और अपने साथ अपनी मां को भी लज्जित करे । अतः ज्वाला ने मां न बनने का निश्चय किया है ।

शृंगारदेवी—पिशाचिनी ज्वाला, तुम मेरे पास मेरे स्वप्नों के खंडहरों को देखकर पैशाचिक आनन्द लेने आई हो या सान्त्वना देने ?

ज्वाला—सचमुच काकीजी, मैं स्वयं भूल गई कि मैं क्या करने आई थी और मुझे यह भी नहीं सूझ पड़ता कि मुझे क्या करना चाहिए । मुझे सचमुच इस बात का दुःख है कि मैं यहां अनर्गल प्रलाप करने लगी । आपके दुःख से मैं वास्तव में बहुत दुःखी हूं । कुछ भी हो, जयमल मेरा भी भाई था ।

शृंगारदेवी—नाटक न कर मेरे सामने ।

ज्वाला—नाटक करना जानती तो मेरे स्वप्न भी खंडहर न बने रहते । विश्वास करो, मैं आपकी व्यथा से व्यथित हूं । आपको मेवाड़ के राज-भवन में पीड़ित होना पड़ा है, क्योंकि मेवाड़ के राजवंश की परम्पराएं ऐसी हैं जिनमें मनुष्यता के लिए कोई स्थान नहीं है । इसी राजभवन में ज्वाला भी अपमानित और लाञ्छित हुई है । यह बात दूसरी है कि पहले

आप मुझे लांछित करने वालों के दल में थीं, किन्तु आज मेरे दल में, सताए हुएों के दल में हैं। अपमान और वेदना ने आज हमको निकट कर दिया है। तारा को अभिमान है कि उसने अपने पिता के कोई पुत्र न होने के अभाव को अपने सौंदर्य एवं बाहुबल से पूरा किया है। आपकी ज्वाला आपके स्वर्गीय पुत्र के अभाव को दूर कर सकती है।

शृंगारदेवी—कैसे ?

ज्वाला—पृथ्वीराज ने और जिस तारा ने आपसे न केवल पुत्र ही छीन लिया, बल्कि इतने दिनों से सहेजकर जिन महाराणा को आपने पालतू हिरण बनाया था, उन्हें भी आपसे छीन लिया है। अतः कुछ भी हो, पृथ्वीराज और तारा के उत्कर्ष को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

शृंगारदेवी—यह मेरे लिए किस प्रकार सम्भव है ?

ज्वाला—सम्भव क्यों नहीं ? यदि आप ठान लें तो मेवाड़राज्य का अस्तित्व डांवाडोल हो उठे। राठौरों की आप पुत्री हैं और इस समय राठौरों की शक्ति पर मेवाड़ का भविष्य निर्भर है। आपके पुत्र की हत्या कर राठौरों का अपमान किया गया है।

शृंगारदेवी—तो तू चाहती है कि एक बार फिर मेवाड़ और मारवाड़ की सीमाएं रक्त से रंग दी जाएं ? एक बार पहले भी मेवाड़ के मुकुट के मोह में पकड़कर मारवाड़ और मेवाड़ की तलवारें रणभूमि में टकरा चुकी हैं। क्या अब उस इतिहास की पुनरावृत्ति की जाए ?

ज्वाला—अवश्य ही, अपमान का बदला लेना राजपूत का धर्म है।

शृंगारदेवी—तो मैं पितृकुल की सहायता से पतिकुल का सर्वनाश करूं ? निस्संदेह मेरे प्राणों में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही है, किन्तु इस ज्वाला में जलते हुए भी मैं विवेक को सर्वथा तिलांजलि नहीं दे सकती। तू नहीं जानती कि नारी के लिए पति क्या है। तूने विवाह ही नहीं किया। इतिहास साक्षी है कि स्वर्गीय महाराणा मोकल की जननी हंसाराव रायमल राठौर की पुत्री थी, किन्तु पतिकुल का सम्मान रखने के लिए उसने अपनी सौत के पुत्र वीरवर चूड़ा के संरक्षण में अपने अल्पायु पुत्र

को रखना स्वीकार किया था और अपने पिता के विरुद्ध रण ठान दिया था ।

ज्वाला—पतिकुल उसे अपमान और कष्टों से पीड़ित करता रहे तब भी क्या नारी को विद्रोह नहीं करना चाहिए ?

शृंगारदेवी—तू तो बहुत धार्मिक दृष्टि की स्त्री बनती है । पूजा-पाठ में बहुत-सा समय लगाती है । देवताओं पर विश्वास रखती है । क्या तूने सती की कहानी नहीं पढ़ी ? सती दक्ष की पुत्री थी और जब उसके पिता ने यज्ञ किया तो शंकर और सती को आमन्त्रित नहीं किया । फिर भी अपने पति की अवहेलना पर सती अनिमन्त्रित ही पिता के यज्ञ में गई, किन्तु वहाँ पति का अपमान होते उसने देखा तो उसे इतनी वेदना हुई कि यज्ञकुंड में कूदकर उसने जान दे डाली । ज्वाला, ऐसा विचित्र है नारी का जीवन । इसे पत्नी और मां बने बिना पूर्ण रूप से तू समझ न सकेगी ।

(इसी समय पृथ्वीराज आकर शृंगारदेवी के चरण छूता है । शृंगारदेवी के मुख से कोई शब्द नहीं निकलता और आंखों से आंसू प्रवाहित होने लगते हैं ।)

पृथ्वीराज—मां, अपने पुत्र को क्षमा करो ।

(शृंगारदेवी फिर भी कुछ नहीं बोलती ।)

ज्वाला—मुझे नहीं पता था कि नाटक करने में भी पृथ्वीराज इतना कुशल है ।

पृथ्वीराज—(सक्रोध ज्वाला को देखकर) ज्वाला, तू अपनी विषवुभी बरछी-सी जवान बन्द नहीं करेगी तो मैं इसे सदा के लिए बन्द कर दूंगा !

ज्वाला—दादा भाई, तुम्हारी तलवार का तीखापन तो सब जानते हैं । अपने सगे भाई पर जिसने घातक वार किया, वह बहिन पर भी, ऐसी बहिन पर जो सहोदरा नहीं है, शस्त्र उठाने में कब संकोच करने वाला है ? तुम्हारी वीरता तो जग-जाहिर है, किन्तु तुम्हारी नाटक करने की कला आज ही देखने में आ रही है । जिस नारी की गोद का लाल तुम्हारे षड्यन्त्र ने छीन लिया है, उसे मां कहकर तुम छलना चाहते हो ?

पृथ्वीराज—ज्वाला, पृथ्वीराज की समर-नीति में षड्यन्त्र के लिए कोई स्थान

नहीं है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह अपने सगे भाई से लोहा ले सकता है, लेकिन षडयन्त्रों का सहारा कभी नहीं लेगा। पृथ्वीराज जिससे लड़ना चाहता है, उसे पूर्ण सावधान करके ही लड़ता है। उसने सिंहों की गुफाओं में घुसकर सोते हुए सिंहों को जगाकर उनपर प्रहार किया है।

ज्वाला—तब ठीक है, जयमल की मृत्यु ने मुझे आशंका में डाल दिया था कि पृथ्वीराज मुकुट के मोह में पड़कर राजवंश में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यम के घर भेज देगा और दुर्भाग्य से मैं और दादा भाई सूरजमलजी राजवंश से सम्बन्ध रखते हैं।

पृथ्वीराज—तुम्हारे पिताजी ने जो परम्परा कायम की है उसका पालन करना पृथ्वीराज के लिए नहीं उनकी अपनी सन्तान के लिए अधिक सम्भव है।

ज्वाला—पृथ्वीराज, यदि ऊदाजी की सन्तान उनके पदचिह्नों पर चलती तो पृथ्वीराज को आज युवराज कहाने का सुअवसर प्राप्त ही न होता।

शृंगारदेवी—अब यह सर्वनाशी विवाद समाप्त भी होगा या नहीं ?

पृथ्वीराज—नहीं माँ, इसे विवाद करने दो। इसे पृथ्वीराज का युवराज-पद बहुत अखरता है और दादा भाई सूरजमल भी अनेक बार मेवाड़ के राजसिंहासन पर अपना अधिकार प्रदर्शित कर चुके हैं। मैं इस विवाद का फैसला तलवार के तर्क से किसी भी क्षण करने को प्रस्तुत हूँ। ज्वाला, तुम्हें और सूरजमल को मेरी चुनौती है कि मेवाड़ के राजसिंहासन पर अधिकार पाने के लिए अपना पूरा यत्न कर देखो। पृथ्वीराज में ताकत होगी तो तुम्हारे नीच प्रयत्नों को विफल करेगा।

ज्वाला—दादा भाई पृथ्वीराज, राजपूत को चुनौती देना उचित नहीं है। हो सकता था मैं और सूरजमल मेवाड़ के हित में इस गृह-कलह को शान्त रखने में सहमत हो जाते, किन्तु जब तुम चुनौती देते हो तो हमारे लिए शान्त रह सकना असम्भव करते हो। कुछ भी हो, हम एक ही राजवंश के प्राणी हैं, रक्त के सम्बन्ध से बंधे हुए हैं। एक-दूसरे के प्रति हमारी संवेदना होनी चाहिए।

पृथ्वीराज—अब तू भी नाटक करने लगी।

ज्वाला—नहीं दादा भाई, मुझमें अनेक दुर्गुण हो सकते हैं किन्तु एक सबसे बड़ा दुर्गुण है कि मेवाड़ राजवंश के किसी व्यक्ति का अपमान मुझसे नहीं सहा जा सकता। जयमल की हत्या में मेवाड़ राजवंश का अपमान हुआ है और तुमने रूप के लोभी बनकर वासना के उन्माद में मेवाड़ राजवंश का अपमान करने वाली नारी से सम्बन्ध जोड़ा है। मेवाड़ राजवंश के व्यक्तियों की उपेक्षा और अवहेलना करने की हिम्मत आज प्रत्येक व्यक्ति को हो गई है।

पृथ्वीराज—ज्वाला, जयमल का कार्य कायरतापूर्ण था और उस कायरतापूर्ण कार्य का समर्थन पृथ्वीराज कर ही नहीं सकता था।

ज्वाला—क्योंकि उसे जयमल को अपने मार्ग से हटाकर मेवाड़ की गद्दी पर अपना निष्कांटक अधिकार रखना था।

पृथ्वीराज—तू जयमल की नादानी से घट जाने वाली दुर्घटना को मनमाना रूप देकर मेवाड़ के राजमहल में संदेह और अविश्वास के जो बीज बो रही है वह क्या इसलिए नहीं कि महाराणा रायमल के पुत्रों में से कोई भी मेवाड़ के राजसिंहासन पर अधिकार रखने में समर्थ न रहे ?

ज्वाला—दादा भाई, ज्वाला ने ऊदाजी की संतान और रायमल की संतान में कभी अन्तर रखा ही नहीं, इसीलिए जयमल की मृत्यु से उसका अन्तःकरण व्यथित हो उठा और इसी कारण वह आनन्ददेवी की व्यथा से भी व्यथित हो उठी है।

शृंगारदेवी—आनन्ददेवी की व्यथा कैसी ?

ज्वाला—आनन्ददेवी के पति सिरौही-नरेश ने एक वेश्या को अपने हृदय की स्वामिनी बनाया है और मेवाड़ की राजकुमारी को निरन्तर तिरस्कृत और अपमानित किया जा रहा है।

पृथ्वीराज—ज्वाला, तू पृथ्वीराज के हृदय में एक और नई विध्वंसक ज्वाला प्रज्वलित कर रही है !

ज्वाला—दादा भाई, मैं असत्य कहती हूँ तो मुझे तुम प्राणदण्ड दे सकते हो। ऊदाजी की संतान और महाराणा रायमल की संतान को लड़ना होगा

तो वे समरभूमि में आमने-सामने अपना बल दिखा लेंगे, किन्तु जहां गहलोत राजवंश के मानापमान का प्रश्न है, वे एक है। ज्वाला यह कभी नहीं भूल सकती कि उसके सम्मान की रक्षा के लिए महाराणा रायमल के पुत्रों ने अपने प्राणों पर खेल जाने में भी संकोच नहीं किया था। अतः मैं कर्तव्य की प्रेरणा से ही आनन्ददेवी के दुःख की कथा तुम्हारे कानों तक पहुंचा रही हूं।

शृंगारदेवी—फिर भी ज्वाला, हमें सचाई को जाने बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहिए।

ज्वाला—काकीजी, यह तो ठीक है। हाथ कंगन को आरसी बया, आप इसका पता लगा सकती हैं।

पृथ्वीराज—ठीक है, यह कथन सत्य हुआ तो सिरौही-नरेश को भी याद हो जाएगा कि मेवाड़ की राजकुमारी का अपमान करना कितना महंगा पड़ता है। (शृंगारदेवी से) मैं विशेष कारण से आया हूं। आपके मन की व्यथा को समझकर मैं मन ही मन दुःखी था, किन्तु लोगों ने जो तरह-तरह की बातें फैला रखी है, उनके कारण आपके पास आने में मुझे संकोच हो रहा था। मुझे मां ने यहां भेजा है।

ज्वाला—वह स्वयं क्यों नहीं आई ?

पृथ्वीराज—अपने दोनों पुत्रों के चले जाने के बाद से वह रोगशंया को छोड़ ही नहीं सकीं, उनमें उठने का सामर्थ्य होता तो वह आज यहां अवश्य आतीं। आज उनका एक पुत्र लौट आया है और वह अपेक्षाकृत प्रसन्न अवश्य हैं, किन्तु साथ ही जयमल की मृत्यु से उन्हें व्यथा भी कम नहीं है। उन्होंने कहलाया है, 'बहिन, अब तुम समझ पाई होगी कि पुत्र का वियोग मां के लिए क्या होता है। बारी-बारी से हम दोनों ने इस व्यथा से परिचय पा लिया है। दुःख भी भगवान् की देन है। उसके पीछे भी मंगल की भावना छिपी रहती है। यह दुःख हमारे ऊपर इसलिए आया है कि हम यह जान सकें कि किसी दूसरी मां का पुत्र भी अपना ही पुत्र है। अब हमारा भगड़ा समाप्त हो जाना चाहिए।'।

शृंगारदेवी—ठीक ही तो कहती है वह, मैंने कभी उनके अन्तर को समझा ही नहीं और मैंने ही उन्हें मृत्यु के समीप पहुंचा दिया। परन्तु भगवान् ने मुझ-पर दुःख का पहाड़ गिराकर मेरी दुर्बुद्धि को छीन लिया। पृथ्वीराज, तुम मेरे जयमल हो, चलो मैं भालारानी के पास जाऊंगी और उनसे क्षमा मांगूंगी।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—निर्जन मंदान। समय—रात्रि। परदा उठता है तो तीन-चार शिलाएं, जो भूमि से दो फुट ऊंची हैं, मंदान में पड़ी हुई दिखाई देती हैं। संग्रामसिंह एक शिला पर बैठा हुआ है। इस समय वह ग्वाले की वेश-भूषा में है। उसके पैरों के पास मजबूत लाठी पड़ी हुई है और हाथों में एक अलगोजा है, जिसे वह बजा रहा है। राजयोगी प्रवेश करते हैं, किन्तु संग्रामसिंह का ध्यान उनकी तरफ नहीं जाता।)

राजयोगी—तलवार की भंकारों में आनन्द लेने वाला योद्धा अब अलगोजे की साधना कर रहा है। (संग्रामसिंह कुछ उत्तर न देकर उठता है और राजयोगी के चरण छूता है और राजयोगी आशीर्वादसूचक हाथ उसके मस्तक पर रखते हैं।) आज यहां तुम्हारी राजसभा का आयोजन है ?

संग्रामसिंह—हां राजयोगीजी, मेरे जैसे बेघरवार व्यक्ति का क्या, जहां भी आसन जमा लिया, घर बन गया, बैठिए।

(राजयोगी एक शिला पर बैठते हैं।)

राजयोगी—मैं तो तुम्हारी गुफा में गया था।

संग्रामसिंह—मैं द्वार-रक्षक को कह आया था, राजयोगी आएँ, तो इधर भेज देना ।

राजयोगी—तुम्हारे संगठन और व्यवस्था की मैं सराहना करता हूँ । साधनहीन एवम् सम्पत्तिहीन व्यक्ति केवल सदुद्देश्य और लगन की पूंजी लेकर कितना कार्य कर सकता है, इसका उदाहरण तुमने उपस्थित किया है । जिन वन-पुत्रों का जीवन पारे के समान चंचल है, उनके मन को जीतकर, कैसे उन्हें एक संगठन में बांध लिया है और जो केवल डाके डालने और आखेट करने में अपने पौष की इतिश्री समझते हैं, उन्हें तुमने किस प्रकार उपयोगी और बलवान् बना लिया है, यह आश्चर्य की बात है ।

संग्रामसिंह—आपके आशीर्वाद और भवानी की अनुकम्पा से संग्रामसिंह के सारे कार्य योजनापूर्वक होते चले जा रहे हैं ।

राजयोगी—यह तो ठीक है, किन्तु मेवाड़ में हिंसा और प्रतिहिंसा के नित्य नए ही अमानुषिक खेल खेले जा रहे हैं ।

संग्रामसिंह—हां, मेवाड़ की स्थिति का निरन्तर पता लेता रहता हूँ । भाई जयमल की मृत्यु का मुझे बहुत खेद है ।

राजयोगी—खेद है ?

संग्रामसिंह—हां, खेद तो है ही । वैसे तो राजपूत की मृत्यु पर खेद करना निरर्थक है । उसका एक पांव सदा मरघट पर रहता है । उसके जीवन और मरण में केवल एक सांस का अन्तर रहता है । किसी भी क्षण यह अन्तर समाप्त हो सकता है । निरन्तर मृत्यु की गोद में खेलने वाले राजपूत की मृत्यु आश्चर्य और खेद का कारण नहीं है, किन्तु जयमल की मृत्यु से गहलोत राजवंश की कीर्ति को कलंक का एक धब्बा लगा है, खेद इसी बात का है ।

राजयोगी—संसार में निष्कलंक कौन है ? चन्द्रमा पर कलंक का धब्बा उसके सौंदर्य की वृद्धि करता है । महाराणा रायमल का न्याय मेवाड़ के यश की ज्योत्स्ना को युग-युग तक उज्ज्वलतम रूप में चमकाता रहेगा । यदि जयमल की काली करतूत न होती, तो महाराणा के व्यक्तित्व को इतने

उज्ज्वल रूप में प्रकट होने का अवसर ही नहीं आता । जिन्हें संसार शृङ्गारदेवी का दास समझता था, वे शृङ्गारदेवी के पुत्र के हत्यारे को जागीर दे सके, और उसकी पुत्री को अपनी पुत्रवधू स्वीकार कर सके, यह उनके सबल व्यक्तित्व को प्रकट करता है । मुझे इस बात का आश्चर्य है कि तुम इस समय भी अज्ञातवास से प्रकट नहीं हुए । यह समय था कि तुम मेवाड़ के गौरव की रक्षा के लिए मेवाड़वासियों को दर्शन देते ।

संग्रामसिंह—नहीं राजयोगीजी, मेवाड़ के राजमुकुट को प्राप्त करने का सुअवसर सामने आते ही मैं प्रकट हो जाता तो संसार को यही जान पड़ता कि मेरा त्याग केवल पाखण्ड था और अभी तक जंगल-जंगल भटककर जिन बिखरी हुई शक्तियों को संगठित कर एक सूत्र में मैं पिरो सका हूँ, वे मुझे स्वार्थी और सत्ता का लालची समझकर मेरा साथ छोड़ देती । इसलिए मैंने अभी छिपकर रहने में ही अपना एवं देश का भला समझा है । समय आएगा जब संग्रामसिंह के अस्तित्व को छिपाए रखने वाले मेघ हट जाएंगे ।

राजयोगी—और संग्रामसिंह का अस्तित्व सूर्य के समान प्रकाशवान् होगा ।

संग्रामसिंह—राजगुरुजी, आप मुझे व्यर्थ बड़प्पन न दीजिए । सूर्य बनने की साध संग्रामसिंह को नहीं है । केवल दीपक बनकर आपसे स्नेह और भवानी से ज्वाला पाकर मेवाड़ के पथ-भटके क्षत्रित्व को मार्ग दिखा सकूँ, तो मैं अपने जीवन को कृतार्थ समझूँगा ।

राजयोगी—तुम भले ही अपनी दृष्टि में अपने आपको लघु दीप ही समझते रहो, किन्तु इतिहास तुम्हारे कार्यों का उचित मूल्यांकन करेगा । मैं चाहता हूँ अब तुम्हें प्रकट हो ही जाना चाहिए ।

संग्रामसिंह—क्यों ?

राजयोगी—सुना है, सूरजमल पृथ्वीराज के युवराज घोषित किए जाने से अत्यंत असन्तुष्ट है । ये दोनों ही भयानक जन्तु है । दोनों एक दूसरे का रक्त पीने के लिए अपने नखों को तेज कर रहे हैं । यदि ये एक दूसरे का रक्त

पीकर शान्त हो जाते तब भी मेवाड़ का बहुत अनिष्ट नहीं होता, किन्तु इनके साथ अनेक सैनिकों के प्राण जाएंगे। मेवाड़ की शक्ति क्षीण होगी।

अतः तुम्हें यह रक्तपात रोकना चाहिए।

संग्रामसिंह—किन्तु, इस रक्तपात को रोकने के लिए मुझे मेवाड़ की राजसत्ता लेनी पड़ेगी। महाराणाजी ने जब पृथ्वीराज से प्रसन्न होकर उसे युवराज-पद सौंपकर मेवाड़राज्य की बागडोर उसके हाथ में दे दी है तो फिर वे अपने निश्चय को बदलेगे भी नहीं और यदि बदलना भी चाहा तो पृथ्वीराज इसे अपमान समझेगा। अतः इस समय अगर मैं मेवाड़ की राजनीति में सामने जाकर कोई कार्य करूंगा तो पृथ्वीराज के साथ मेरा संघर्ष अवश्य होगा।

राजयोगी—तब मेवाड़ में गृहयुद्ध की जो ज्वाला जल रही है, उसकी लपटों को शान्त करने का क्या कोई उपाय नहीं है ?

संग्रामसिंह—बालक अग्नि को सुन्दर समझकर कौतूहलवश उसे पकड़ने दौड़ता है और यदि उसे रोका जाता है तो वह समझता है, मुझपर अत्याचार किया जाता है। गृहयुद्ध की ज्वाला के प्रति पृथ्वीराज और सूरजमल वेग से झपट रहे हैं, उन्हें झपटने दो राजयोगीजी, इसीमें मेवाड़ का मंगल है।

राजयोगी—गहलोत राजवंश के वीर और पराक्रमी राजवंशियों के नाश में ही मेवाड़ का मंगल कैसे है ?

संग्रामसिंह—राजयोगीजी, किसी राजकुल में अहम का नशा एवं दम्भ की दुर्भावना विवेक-बुद्धि को समाप्त कर दे तो ऐसे राजकुल का पारस्परिक युद्ध से नाश हो जाना ही देश के लिए कल्याणकारी होता है। भगवान् कृष्ण ने अपने स्वजनों को ऐसी ही सर्वनाश की होली खेलने की खुली छुट्टी दे दी थी; क्योंकि वे अभिमान से अभिभूत होकर अपने आदर्शों को भूल बैठे थे।

राजयोगी—वह युग दूसरा था संग्रामसिंह ! कौरव-पांडवों का महाभारत, यदुवंशियों का पारस्परिक संघर्ष और ऐसी ही अन्य विभीषिकाएं, भारत

की आधारभूत शक्ति, सर्वसाधारण जन के जीवन पर अधिक प्रभाव नहीं डाल सकीं। राजघरानों के संघर्ष सैनिक शक्तियों की टक्करों में समाप्त हो जाते थे। यह अवश्य है कि कुछ योद्धाओं को संसार से विदा ले लेनी पड़ती थी, किन्तु जनजीवन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। राज्यों के उलटफेर भी सर्वसाधारण के जीवन की गति में कोई विक्षेप नहीं ला सकते थे। भारत के सुख-साधनों में किसी प्रकार का ह्रास नहीं होता था। कारण, उस समय भारत में कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो अपने आपको विदेशी समझती हो। और किसी विदेशी शक्ति को भारत पर आक्रमण करने का साहस भी नहीं होता था। अतः उस समय का गृहयुद्ध देश के लिए अधिक घातक सिद्ध नहीं होता था।

संग्रामसिंह—आपके कथन की सचाई को मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु मैं देख रहा हूँ और इतिहास कह रहा है कि प्रत्येक क्षण भारतभूमि पराधीनता के नागपाश में अधिकाधिक जकड़ी जा रही है। हम छोटे-छोटे राज्य, जाति और वंश की संकीर्ण सीमाओं के बाहर अपनी दृष्टि ले ही नहीं जा सकते। भारत की शक्ति अपार है, किन्तु अजेय नहीं है। वह अजेय हो सकती है यदि भारतीयों में दूरदर्शिता आ सके, संकीर्णताओं की सीमाएं तोड़ी जा सकें, व्यक्तिगत हित के ऊपर हम सामूहिक हित का ध्यान रखना सीख सकें और सम्पूर्ण देश का जनबल किसी एक झंडे के नीचे आ सके।

राजयोगी—यह कार्य करने के लिए कोई व्यक्ति बाहर से तो नहीं आएगा।

संग्रामसिंह—बाहर से आ भी जाए तो वह विदेशी क्या शत-प्रतिशत भारत का हो सकेगा ? नहीं, हमींमें से किसीको देश के इस अंधकार-युग में नेतृत्व करना पड़ेगा। राजयोगीजी, आपके अनुचर संग्रामसिंह ने कभी स्वहित अथवा स्वार्थ की दृष्टि से किसी बात को सोचा ही नहीं, अन्यथा उसकी बाहुओं में सूरजमल या पृथ्वीराज से कम बल नहीं है। उसके संकेत पर सदा ही सहस्रों तलवारें विद्युत् की भांति आकाश में चमकने को आतुर रही हैं। आज भी सहस्रों धनुर्धारी भील एवं अन्य वनपुत्र प्राणों की बाजी

लगाने को तैयार हैं, किन्तु मान लो अपनी का रक्त बहाकर मैं बाप्पा रावल के सिंहासन पर बैठ भी गया तो क्या होगा ? गलत रास्ते से बना हुआ महाराणा क्या सर्वसाधारण के हृदय का राजा हो सकेगा ? ऊदाजी, भी अपने पिता की हत्या कर राजमुकुट अपने मस्तक पर रखने में सफल हो गए थे, किन्तु विदेशी शक्तियों की सहायता से भी अपने महाराणा-पद को कायम न रख सके और अन्त में उन्होंने और भी अनेक ऐसे कार्य किए जिनसे मनुष्यता को लज्जा आए। इसलिए मैं गृहयुद्ध के मार्ग से बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी की ओर नहीं बढ़ना चाहता।

राजयोगी—तब इस शक्ति-संचय का उद्देश्य क्या है ?

संग्रामसिंह—राजयोगीजी, मेरे प्राणों में एक अखंड और सबल भारत का स्वप्न है, जिसे अवसर पाकर पूर्ण करना चाहता हूं।

राजयोगी—यह तो ठीक है। तुम्हारा स्वप्न पूरा हो, यह मेरी भी कामना है। अपनी थोड़ी-सी शक्ति तुम्हारे स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए लगाने को राजयोगी प्रस्तुत है, किन्तु बड़े आकाशचुंबी महल बनाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति भोंपड़ियों को नष्ट ही होने दे, यह आवश्यक नहीं है। मेवाड़ का राज्य इस समय खतरे में है। सूरजमल मालवा के सुलतान से सहायता लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का उद्योग कर रहा है। तुम्हारा इस समय छिपे रहना अथवा तटस्थ रहना भयंकर परिणाम उपस्थित कर सकता है।

संग्रामसिंह—कैसी विधि की विडम्बना है कि जिस सूरजमल ने मेवाड़ के यज्ञ की रक्षा करने के लिए अपने पिता से विद्रोह किया था, वह स्वयं राज्य-लिप्सा के उन्माद में विवेक-बुद्धि गंवा बैठा।

राजयोगी—हां, जब ऊदाजी ने दिल्लीपति की विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया था, तब तुम सब भाई एक थे और तुम्हारे नेतृत्व में मेवाड़ के एवं राजस्थान के सभी सामन्त एकत्र थे। तुम्हारी सुदृढ़ बाहुओं ने दिल्ली की सेना का गर्व चूर कर दिया था, किन्तु अब पृथ्वीराज अकेला है। सूरजमल को मालवा के सुलतान का सहयोग प्राप्त है।

मेवाड़ के सामन्त अब मेवाड़ को ओर से युद्ध करने के लिए पहले जैसा उत्साह नहीं दिखाते । यह भी सम्भव है कि मालवा के सुलतान के साथ गुजरात का बादशाह भी सम्मिलित होकर अपने चिर-वैरी मेवाड़ से बदला लेने का यत्न करे । पृथ्वीराज में उद्दाम आवेश है । वह अवश्य ही शत्रुओं से टकरा जाएगा, किन्तु परिणाम शुभ निकलेगा; इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता ।

संग्रामसिंह—चिन्ता न करो राजयोगीजी, संग्रामसिंह परिस्थिति से पूर्णतः परिचित है । शत्रुओं को यही समझने दो कि मेवाड़ इस समय विभाजित है एवं उसकी सैनिक शक्ति अति दुर्बल है । मेवाड़ की शक्ति कितनी है यह तो समय ही प्रकट करेगा ।

राजयोगी—किन्तु पृथ्वीराज को मालूम होना चाहिए कि वह अकेला नहीं है ।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज के स्वभाव को जानते हुए भी ऐसी बात कहते हैं आप ? संग्रामसिंह का अज्ञातवास से प्रकट होकर उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत होना वह अपना अपमान समझेगा । वह जो कुछ करना चाहता है अपनी स्वयं की शक्ति से करना चाहता है । उसकी आकांक्षा पूरी होने दीजिए । उसे अकेले ही अपने प्रबल पराक्रम का प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होने दीजिए । उसके मन को संतोष भी इसीसे होगा । मैं उसके उत्साह का पथ अवरोध नहीं करूंगा ।

(दो भील अजमेर के नगरसेठ कर्मचन्द को बन्दी बनाए हुए लेकर आते हैं ।)

संग्रामसिंह—क्षमा कीजिए सेठजी, मुझे आपको इस तरह बुलाना पड़ा ।

कर्मचन्द—अरे कौन, दीपा ?

संग्रामसिंह—हां सेठजी, यह आपकी गाएं चराने वाला दीपा ही है । (भीलों से) सेठजी के बन्धन खोल दो । और तुम जाओ ।

(भील कर्मचन्द की मुश्कें खोलते हैं और चले जाते हैं ।)

संग्रामसिंह—आइए (रिक्त पड़ी हुई शिला की ओर संकेत करते हुए) यहां बैठिए ।

कर्मचन्द—मुझे ज्ञात न था कि एक डाकू छद्मवेश में मेरे यहां नौकर है ।

राजयोगी—सेठजी, बड़े भाग्य से किसीको ऐसा नौकर मिलता है ।

कर्मचन्द—आप तो कोई साधु पुरुष जान पड़ते हैं । आप इन डाकुओं में क्यों शामिल हुए ?

संग्रामसिंह—और अब अजमेर के नगरसेठ कर्मचन्दजी को भी इस डाकूदल में सम्मिलित होना पड़ेगा । आप खड़े क्यों हैं, बैठ जाइए । अब तो हम लोगों के बीच आ फंसे हैं । छुटकारे का कोई मार्ग नहीं है ।

(सेठ कर्मचन्द शिला पर बैठते हैं ।)

राजयोगी—सेठजी, इस दस्युदल में सम्मिलित होने में ही आपका निस्तार है ।

कर्मचन्द—बनिया तो प्रत्येक कार्य लाभ के लिए करता है । आतंक से आप उससे कुछ करा नहीं सकते । चमड़ी चली जाए, लेकिन दमड़ी न जाए, यह वैश्यों का मूलमन्त्र है ।

संग्रामसिंह—किन्तु डाकू तो न चमड़ी पर दया करते हैं, न दमड़ी पर ! जहां चमड़ी और दमड़ी दोनों जाने का डर हो, वहां दमड़ी देकर चमड़ी बचाई जा सकती है, पर दमड़ी तो बचाई नहीं जा सकती ।

राजयोगी—लाभ भी आपको होगा ।

कर्मचन्द—कैसा लाभ ?

संग्रामसिंह—सबसे बड़ा लाभ तो आपको यह होगा कि अपार धन-सम्पत्ति का संग्रह जो आपने किया है, उसकी रखवाली करने की चिन्ता से आप मुक्त हो जाएंगे ।

राजयोगी—जब धन ही नहीं रहेगा तो उसकी रक्षा करने की चिन्ता भी नहीं करनी पड़ेगी ।

कर्मचन्द—क्या होगा इस धन का ?

संग्रामसिंह—इस धन से शस्त्र बनाए जाएंगे ।

कर्मचन्द—डाका डालने के लिए ?

संग्रामसिंह—नहीं, डाकुओं से देश की रक्षा करने के लिए । आप डरें नहीं, आप पर कोई अत्याचार नहीं किया जाएगा ।

राजयोगी—आप जब अपने दीपा का वास्तविक परिचय पाएंगे तो सम्पूर्ण सम्पत्ति इसके चरणों में रख देना चाहेंगे, और आपको पश्चात्ताप होगा कि इससे भी अधिक सम्पत्ति आपके पास क्यों नहीं है।

कर्मचन्द—साधु महाराज, लोभ तो अगस्त्य मुनि की प्यास है। वह कब शान्त होती है ?

संग्रामसिंह—कभी-कभी बुराई में से ही भलाई निकल आती है। आपका लोभ हम लोगों के लिए दैवी सहायता सिद्ध हुआ है। धनप्राप्ति के लिए हम कहां-कहां भटकते फिरते। आपके लिए तो आपकी सम्पत्ति एक व्यर्थ का बोझा है, जैसे गधे की पीठ पर सोने की ईंटें लाद दी गई हों। संपत्ति का मूल्य और महत्व उसके उपयोग में है। जो स्वेच्छा से सम्पत्ति का सदुपयोग नहीं करता, काल का कठोर हाथ उसका सब कुछ छीन लेता है। लक्ष्मी को दीर्घकाल तक बेकार एक जगह बैठा रहना अच्छा नहीं लगता।

कर्मचन्द—तु तो बड़ी बातें बनाना जानता है।

संग्रामसिंह—केवल बड़ी-बड़ी बातें ही नहीं बनाना जानता, बल्कि बड़े-बड़े काम करने की शक्ति भी रखता हूं। आपको बन्दी बनाकर यहां ले आना शक्तिवान् हाथों का ही काम है, किन्तु मैं आपको अपनी शक्ति का साक्षीदार बनाना चाहता हूं।

कर्मचन्द—किस तरह ?

संग्रामसिंह—आपकी सम्पत्ति का स्वामी बनकर। हम एक दूसरे की शक्ति की अभिवृद्धि करने वाले हैं। आपका सहयोग मुझे चाहिए। आपको किसी दिन कष्ट दूंगा, यह मन में सोचकर ही मैंने ग्वाला बनकर आपके यहां नौकरी की है। आपका नमक खाया है, अतः आपकी प्रतिष्ठा को बढ़ाना मेरा कर्तव्य है। आपकी सम्पत्ति का जब तक सदुपयोग नहीं होगा, आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी नहीं। अतः मुझे बाध्य होकर आपकी ही प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आपकी सम्पत्ति छीन लेनी पड़ेगी।

कर्मचन्द—दुष्ट ! मुझे पता नहीं था कि मैंने घर में नौकर के रूप में डाकू को आश्रय दे रखा था।

राजयोगी—सेठजी, यह सम्पत्ति किसीके साथ जाती नहीं है। यह तो व्यर्थ का बोझा है, जो मनुष्य को स्वर्ग में जाने से रोकता है। अतः आप स्वेच्छा से ही अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देश के लिए प्राण न्योछावर करने वालों को समर्पित कर दीजिए। यदि इन्हें आपपर बल-प्रयोग करना पड़ा तो इनके मन को भी सन्तोष नहीं होगा और आपको भी देने में जो अलौकिक आनन्द आता है उसकी प्राप्ति नहीं होगी। आप विश्वास रखिए, एक महान् यज्ञ के लिए ही आपकी सम्पत्ति का उपयोग होगा।

कर्मचन्द—यज्ञ करने के लिए ही तुम्हें धन चाहिए था तो मुझे बांधकर मुझे यहां लाने की आवश्यकता क्या थी ? कम-से-कम आपकी सफेद दाढ़ी और भगवा वस्त्रों का अपमान तो मैं नहीं कर सकता था।

संग्रामसिंह—हमसे भूल हुई, किन्तु आपसे सारी बातें खोलकर कह सकना आपकी हवेली में किसी तरह सम्भव नहीं था और आपको राजी-राजी यहां लाना भी सम्भव नहीं था, इसीलिए यह मार्ग पकड़ना पड़ा। आइए हमारे साथ, हम अपना यज्ञस्थान आपको दिखाएं। सारी बात आप विस्तार से सुन लें। उसके पश्चात् आप स्वेच्छा से हमें सहयोग देगे, इसका मुझे विश्वास है।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान—गम्भीर नदी के निकट रणक्षेत्र में सूरजमल का डेरा। समय—रात्रि। सूरजमल डेरे में एक बिस्तर पर आहत अवस्था में लेटा हुआ है और एक जर्जर उसके जख्मों को ढी रहा है। एक सुराही और पानी पीने का पात्र सूरजमल के सिराहने की तरफ रखा हुआ है। कुछ तलवारें, धनुष-बाण और ढालें आदि

अस्त्र-शस्त्र डेरे में रखे हुए दिखाई देते हैं। पृथ्वीराज प्रवेश करता है। सूरजमल पृथ्वीराज को देखकर उठने का यत्न करता है, किन्तु जराह उसे रोकता है।)

जराह—उठिए नहीं, जख्मों के टांके टूट जाएंगे।

(सूरजमल जराह के आदेश की अवहेलना कर उठकर खड़ा हो जाता है और पृथ्वीराज को गले लगाता है।)

सूरजमल—आओ भैया, तुम्हें देखकर नया जीवन मिल गया है। तुमने तो आज अपनी अप्रतिम शूरवीरता से गम्भीर नदी का पानी लाल कर दिया।

पृथ्वीराज—(आलिगनबद्ध अवस्था में हो) दादा भाई, आपने भी कम पराक्रम नहीं दिखाया है। मुझे खेद है कि मेरे हाथों से आपको अनेक जख्म खाने पड़े। कुछ भी हो, रक्त का सम्बन्ध जोर मारता ही है। आप पर प्रहार करता हुआ मैं ऐसा अनुभव करता था, मानो अपने ही ऊपर प्रहार कर रहा हूँ। आज जब मैं सोने का यत्न करने लगा तो आपके शरीर के जख्म मेरी आंखों के सामने घूमने लगे। यत्न करने पर भी मुझे नींद नहीं आई। इसीलिए आपके जख्मों को देखने के लिए मुझे आना ही पड़ा।

(दोनों भाई आलिगन से अलग होते हैं।)

सूरजमल—(जराह से) अब तुम जाओ, मेरे जख्म पृथ्वीराज के आने से ही बहुत भर गए हैं। और न भी भरें तो सूरजमल को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। जो जख्म बिछुड़े हुए भाई को पाम ला सकते हैं, वे तो एक प्रकार से भगवान् का वरदान है।

पृथ्वीराज—दादा भाई, व्यर्थ भावुकता में मत पड़ो; बेचारे को अपना काम करने दो।

सूरजमल—भैया पृथ्वीराज, जख्मों को सीने से लाभ क्या? कल फिर अपने तूफानी तरुण तेजस्वी अनुज से टक्कर होगी और पुराने जख्मों के टांके तो दूटेंगे ही और अनेक नये होंगे। तुमसे इसी प्रकार युद्धरत रहना पड़ा।

तो तुम्हारे दादा भाई के शरीर में इन्द्र के सहस्र नयनों की भांति जलूम ही जलूम दिखाई देंगे । (जर्राह से) तुम जाओ भाई । रणमद के मतवाले राजपूत जलूमों की चिकित्सा नहीं कराया करते ।

(जर्राह अपना सामान लेकर जाता है ।)

सूरजमल—(पृथ्वीराज से) तुम बड़े दुस्साहसी हो । यहां शत्रु के डेरे में निर्द्वन्द्व चले आए ।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज दुस्साहसी तो है ही, साथ ही विश्वास का धनी भी । इसे गहलोत राजवंश के रक्त पर अटूट विश्वास है । बाप्पा रावल के वंशजों में दुर्भाग्य से कोई एक ऊदाजी भले जन्म ले ले, अन्यथा मनुष्यता को लज्जित करने वाला कार्य इसमें से कदाचित् ही कोई करे । मुझे विश्वास है कि ऊदाजी का पुत्र भी समर-भूमि में चाहे कितना ही भयंकर और निर्मम हो, किन्तु समर-भूमि के बाहर एक स्नेही और ममतामय मनुष्य है । मेवाड़ का राजमुकुट यदि वह अपने मस्तक पर रखेगा तो किसी पर ओढ़ा प्रहार करके नहीं, किसी षड्यन्त्र के जोर पर नहीं, बल्कि खुले मैदान में अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त कर ।

सूरजमल—(बैठते हुए) सूरजमल पर जब तुमने इतना विश्वास किया है तो वह भी विश्वासपात्र बनने का प्रयत्न करेगा । समर-भूमि में हम एक दूसरे के रक्त के प्यासे रहकर भी समर-भूमि के बाहर बन्धुत्व का पालन करेंगे ।

पृथ्वीराज—यही भारत के क्षत्रियों की परम्परा है । महाभारत के युद्ध में यही तो होता था । कौरव और पांडव दिन भर प्रलय की विनाश-लीला में रत रहकर रात्रि को स्नेहपूर्वक परस्पर चर्चाएं करते थे । हमें उस परम्परा का पालन करना चाहिए ।

सूरजमल—निश्चय ही, सूरजमल उसी उदार परम्परा का पालन करेगा । छल-प्रपंच से प्रतिद्वन्द्वी की असावधान स्थिति में हत्या कर डालने में कोई वीरता नहीं । सूरजमल अपने रक्त के सम्बन्धियों से संघर्ष करेगा, रक्त की नदियां प्रवाहित करेगा, किन्तु राजपूती परम्परा को बदनाम नहीं करेगा ।

पृथ्वीराज—दादा भाई, किसी भी राजपूत का संहारक रूप देखकर पृथ्वीराज को तो आनन्द ही प्राप्त होता है, जैसे कला के प्रेमी नाटक, नृत्य और संगीत आदि के प्रदर्शनों में रसविभोर होकर आनन्द पाते हैं, उसी प्रकार मुझे युद्ध की विनाश-लीला देखकर आनन्द आता है। जिस प्रकार किसी मद्यप को सुरा-सेवन से आह्लाद प्राप्त होता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज को समर-भूमि में शस्त्र-संचालन से। जिस प्रकार भक्त को भगवान् की उपासना में आनन्द आता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज शस्त्रों की भंकार और आहतों के चीत्कार से पुलकित होता है।

सूरजमल—आज तुम्हारा आवेश और रण-कौशल आंखों को तृप्त करने वाला था। घोड़े की लगाम मुंह में पकड़े हुए दोनों हाथों से खड्ग-संचालन करते हुए तुम मूर्तिमान् विनाश के स्वरूप जान पड़ते थे।

पृथ्वीराज—और दादा भाई, तुमको भी मैंने देखा था। तुम भी साक्षात् रुद्र के अवतार बने हुए थे।

(इसी समय पृथ्वीराज और सूरजमल के बीच में एक तीर आकर गिरता है, जिसमें एक कागज बंधा हुआ है।)

सूरजमल—आश्चर्य, सूरजमल के डेरे में इस समय शर-संचालन करने वाला कौन हो सकता है? कहीं तुम्हारे किसी आदमी का काम तो नहीं है पृथ्वीराज?

पृथ्वीराज—बस, डगमगा गया आपका विश्वास! यह डेरा आपका है और यह डेरा मालवा के सैनिक शिविर में है। अतः यह शर कहां से आया, यह आप स्वयं अधिक जान सकते हैं। पृथ्वीराज अनाड़ियों का खेल नहीं खेलता। उसके संकेत पर यह शर आता तो निश्चित रूप से लक्ष्यवेध करता। हो सकता है कि किसीने पृथ्वीराज को लक्ष्य करके यह शर संचालित किया हो।

सूरजमल—(बाण को उठाकर उसमें बंधे हुए कागज को पढ़ता है।) यह शर किसीके प्राण लेने नहीं आया है, अपितु किसीका सन्देशवाहक बनकर आया है।

पृथ्वीराज—(मुस्कराकर) दादा भाई की किसी विरहिणी ने मेघदूत की भांति शरदूत द्वारा अपना प्रेम-सन्देश भेजा है ।

सूरजमल—(मुस्कराते हुए) राव सूरतान की अनिद्य सुन्दरी राजकुमारी तारा को पाकर तुम्हारे कठोर हृदय में भी रस का स्रोत उमड़ पड़ता है, तभी रणभूमि में भी प्रेम-सन्देश की बात करते हो ।

पृथ्वीराज—दादा भाई केवल शस्त्र-संचालन में ही निपुण नहीं है, अपितु व्यंगभरे शब्दबाणों की बौछार करने में भी कुशल है । पृथ्वीराज वाग्युद्ध में अपने बड़े भाई से हार मानता है । अब यह तो देखिए कि पत्र में क्या सन्देश है ?

सूरजमल—(शर से पत्र अलग करके पढ़ता है ।) कितनी प्रसन्नता की बात है कि मेवाड़ के दो परम पराक्रमी पुत्र शत्रुता को भुलाकर एकत्र हुए हैं । यह मिलन स्थायी हो सके तो कितना अच्छा हो । व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जननी-जन्मभूमि के हृदय पर प्रहार मत करो, मेवाड़ के वीर पुत्रों !

पृथ्वीराज—हूँ, कोई मेवाड़ का शुभचिंतक चाहता है कि यह गृहयुद्ध समाप्त हो जाए ।

सूरजमल—समाप्त हो जाए, यह तो अच्छा है ; किन्तु दोनों भाइयों के सम्मान की रक्षा करते हुए सन्धि होनी चाहिए ।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज के शब्दकोष में संधि शब्द नहीं है दादा भाई ! प्रतिद्वंद्वी का पूर्ण पराजय या अपने जीवन का बलिदान, दो ही स्थितियाँ उसे स्वीकार हैं, तीसरी कोई नहीं ।

सूरजमल—अच्छी बात है, सूरजमल भी रणभूमि से मुह फेरने वाला कायर प्राणी नहीं है । सूरजमल अपने न्यायपूर्ण स्वत्व को प्राप्त करने के लिए अन्तिम क्षण तक युद्ध करेगा ।

(इसी समय एक और तीर आता है, उसमें भी एक पत्र बंधा हुआ है ।)

पृथ्वीराज—(शर से पत्र लेकर पढ़ता हुआ) याद रखो, तुम्हारी राज्यलिप्सा

और अहम्-भावना मेवाड़ के सर्वनाश का कारण बन सकती है। दो राज-कुमारों का मुकुट का मोह सहस्रों मेवाड़ी वीरों के मस्तकों का ग्राहक बनेगा। यह विनाश-लीला समाप्त होनी ही चाहिए।

सूरजमल—आश्चर्य, हमें सत्पथ पर लाने का यत्न करने वाला यह कौन है ? यह तो निश्चित बात है कि वह शर-संचालन में अर्जुन के समान कुशल है। वह चाहे तो हमारे प्राण भी ले सकता है, किन्तु वह निश्चित रूप से हमारा शुभचिन्तक है। जो व्यक्ति मालवा के सैनिक-शिविर में आकर सूरजमल के डेरे में बाणों के माध्यम से अपने संदेश को भेज सकता है, वह अवश्य ही कोई शक्तिशाली व्यक्ति है।

(इस समय तीसरा शर आता है, उसमें भी पत्र बंधा हुआ है।)

पृथ्वीराज—(शर का पत्र खोलकर पढ़ता हुआ) इन शरों के संचालक में तुम दोनों एवं मालवा के सुलतान से अधिक शक्ति है। उसकी प्रार्थना ही नहीं, आज्ञा है कि यह रक्त की होली समाप्त की जाए। मेवाड़ी वीर सैनिकों को भेड़-बकरों की भांति कटवा देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। (पत्र पढ़ना बन्द करके सूरजमल से) दादा भाई, यह व्यक्ति वास्तव में विचित्र है और उसके सन्देश में सचाई भी जान पड़ती है।

सूरजमल—सचाई जान पड़ती है तो तुम मेवाड़ के राजमुकुट का मोह छोड़कर अपने बड़े भाई के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो और रक्तपात को रोको।

पृथ्वीराज—यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ, पृथ्वीराज संधि करना नहीं जानता। परिणाम शुभ हो अथवा अशुभ, जब तक सामने वाला विनीत होकर उसमें प्रार्थना नहीं करता, अपनी पूर्ण पराजय स्वीकार नहीं करता, वह युद्ध से मुंह नहीं मोड़ सकता। दादा भाई, आप मेवाड़ के राजमुकुट के अधिकारी पृथ्वीराज के शव पर पैर रखकर ही हो सकेंगे। हाँ, इस युद्ध को रोकने का एक उपाय है।

सूरजमल—क्या ?

पृथ्वीराज—यही कि तुम अपने सहायक मालवा के सुलतान की सेना को वापस कर दो ।

सूरजमल—और मैं अकेला मेवाड़ की सम्पूर्ण सेना से युद्ध करूं ? खूब अच्छा सुभाव है तुम्हारा !

पृथ्वीराज नहीं दादा भाई, मेवाड़ की सेना भी वापस चली जाएगी । पृथ्वीराज और सूरजमल भवानी के मन्दिर में जाकर उनके सम्मुख द्वन्द्वयुद्ध द्वारा अपने भाग्यों का फैसला कर सकते हैं । जो जीवित रहे मेवाड़ का युवराज हो ।

सूरजमल—नहीं पृथ्वीराज, सूरजमल को मेवाड़ का राजसिंहासन अवश्य चाहिए, लेकिन पृथ्वीराज के प्राण नहीं । सूरजमल तो मेवाड़ के वर्तमान सत्ता-धारियों की सैनिक शक्ति को पराजित कर अपना स्वत्व प्राप्त करना चाहता है । यह बात नहीं कि वह द्वन्द्वयुद्ध से घबराता है, किन्तु उसकी धारणा है कि द्वन्द्वयुद्ध से उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं होगी । सूरजमल का क्या है, वह पृथ्वीराज के खड्ग-प्रहार से चिरनिद्रा में लीन हो जाएगा तो एक बहिन के अतिरिक्त उसके लिए आसू बहाने कौन आएगा ? किन्तु पृथ्वीराज अपने माता-पिता का एकमात्र अवशेष पुत्र है । सूरजमल की तलवार से यदि उसे संसार से कूच करना पड़ा तो उसके माता-पिता के हृदय पर क्या बीतेगी, इसकी कल्पना से ही उसके प्राण कांप उठते हैं ।

पृथ्वीराज—इतनी दयामाया है अभी दादा भाई में ?

सूरजमल—नहीं, सूरजमल मनुष्य थोड़े ही है ? उसमें हृदय के स्थान पर एक लोहे का टुकड़ा रखा हुआ है । मेवाड़ के राजवंश ने सूरजमल के धड़कते हुए हृदय की आवाज को सुनना चाहा होता, उसका अर्थ समझने का यत्न किया होता, तो उसे आज यह रास्ता पकड़ना ही क्यों पड़ता ?

पृथ्वीराज—दादा भाई, आपके वीर किन्तु कोमल हृदय को मैं कुछ-कुछ समझ सका हूं, किन्तु फिर भी अब हम मार्ग नहीं बदल सकते ।

सूरजमल—ठीक है, समय का यही आदेश है । हम समय के हाथ के खिलौने हैं ।

पृथ्वीराज—ठीक है, अब मैं आपसे विदा लेता हूँ। कल समर-भूमि में फिर भेंट होगी।

सूरजमल—चलो, थोड़ी दूर तक तुम्हें पहुँचा आऊँ। मुझे यह भी पता लगाना है कि ये शर मेरे डेरे में किसने संचालित किए। वह या तो हमारी सेना का ही कोई व्यक्ति है या छिपकर कोई बाहर से आया हुआ है।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—समरभूमि में महाराणा रायमल का डेरा। समय—दिन का तीसरा प्रहर। महाराणा आहत अवस्था में लेटे हुए हैं। राजयोगी उन्हें औषध पिला रहे हैं। दो मेवाड़ी सैनिक पहरा दे रहे हैं। राजयोगी औषध पिलाकर पात्र पास में रखी हुई एक चौकी पर रखते हैं। महाराणा आंखें खोलकर इधर-उधर देखते हैं।)

महाराणा रायमल—मैं यहां ?

राजयोगी—हां महाराणाजी, आप अपने जीवन की उपेक्षा कर सकते हैं, किन्तु मेवाड़ को अभी आपकी छत्रछाया की अत्यन्त आवश्यकता है। आपको आहत एवं मूर्च्छित देखकर आपके हाथी को महावत रणभूमि के बाहर ले आया। फिर आपको होश में लाने के लिए डेरे में लाकर उपचार करना आवश्यक था ही।

महाराणा रायमल—जानता हूँ, मेवाड़ियों का मुझ पर अत्यन्त मोह है, किन्तु रणभूमि से किसी क्षत्रिय को विमुख करना उसकी आत्मा को कष्ट देना है।

राजयोगी—यह ठीक है, लेकिन देश के हित के लिए अपनी आत्मा को थोड़ा

कष्ट देना अनुचित नहीं है महाराणाजी ? आपके नेतृत्व ने मेवाड़ के खोते हुए गौरव की रक्षा की है, किन्तु आपके अविरल प्रयत्नों के होते हुए भी अभी तक मेवाड़ की नैया मंभधार में है। इसलिए नैया के खेने वाले को धारा में विलीन होते हुए देखना और उसे बचाने का यत्न न करना, उस नैया में बैठे हुए लोगों के लिए आत्महत्या के समान है। आपका व्यक्तित्व मेवाड़ की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बांधने वाला है। आप इस आयु में कालभैरव का रूप धारण कर देश के शत्रुओं को लोहा लेते हैं, यह आपकी अपने देश के प्रति विशेष अनुकम्पा है, किन्तु सच पूछो तो हम चाहते हैं कि आप अब अपने जीवन को संकट में न डालें।

महाराणा रायमल—राजयोगीजी, राजपूत युद्ध करने के लिए कभी बूढ़ा नहीं होता। जो सेना-नायक अपने आपको युद्ध की ज्वाला से अलग रखकर सेना का नेतृत्व करता है, उसपर सेना का विशेष विश्वास नहीं होता। यदि अपने आपको देश का जननायक अथवा राजा कहाने वाला अपने प्राणों का मोह रखकर रणभूमि में जाने से मुंह मोड़ता रहे तो उसके संकट पर उसके सैनिक अपने जीवन की बलि देने का उत्साह कहां से प्राप्त कर सकते हैं। मेवाड़ के महाराणाओं के संकेत पर आज तक जो सहस्र-सहस्र मेवाड़ी योद्धाओं ने प्राणों की आहुति देकर मेवाड़ की कीर्ति की ध्वजा उन्नत की है वह केवल इस कारण कि जब भी संकट की अवस्था आई उस समय मेवाड़ का छत्रधारी प्राणों की बाजी लगाने में सबसे आगे रहा।

राजयोगी—निश्चय ही मेवाड़ के महाराणाओं ने अपनी गौरवपूर्ण वीरता से भारतभूमि को गौरवान्वित किया है। युग-युग तक उनके यश की गाथाएं इस भूमि के वासियों को वीर भावनाओं से भरती रहेंगी।

महाराणा रायमल—इस समय तो आप मेवाड़ के महाराणाओं की स्तुति करने में चारणों से भी बाजी मार ले गए। अपने पूर्वजों की वीरता से मैं भी अनुप्राणित होता हूं, किन्तु मुझमें उन जैसी शक्ति कहां है। मैं तो

उनके पद-चिह्नों पर चलने का यत्न ही कर रहा हूं। आप जैसे गुरुजनों का आशीर्वाद और सहयोग ही मुझे थोड़ा-बहुत सफल बना सका है।

राजयोगी—नहीं महाराणाजी, यदि आपमें ही कर्तव्य-भावना, विवेक-बुद्धि और वीरता का अभाव होता तो मेवाड़ की स्वाधीनता का दीपक कभी का बुझ जाता।

महाराणा रायमल—(शंका पर बैठते हुए) मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि आप समर-भूमि की ज्वाला में अपने जीवन को भोंकने के लिए यहां कैसे आ घमके ? आपका स्थान रणभूमि नहीं, अपितु देव-मन्दिर है। ज्ञान और भक्ति की ज्योति को मेवाड़ियों के हृदय में प्रकाशित रखने के लिए यह आवश्यक है कि आप जैसे महात्माओं को युद्ध की लपटों से अलग रखा जाए।

राजयोगी—महाराणाजी, आपकी मेरे प्रति जो ममता है, वही यह बात कह रही है, किन्तु वाञ्छित यह है कि जिस समय देश पर संकट आए वहां के प्रत्येक व्यक्ति समर-क्षेत्र में कर्तव्य-पालन के लिए आगे धड़े। इससे आप भी सहमत होंगे। मेवाड़भूमि का एक पुत्र होने के नाते मुझे भी अपने कर्तव्य का पालन करना आवश्यक जान पड़ा। रण की देवी भवानी का उपासक हाथ में अग्नि धारण कर लोहा न भी ले सके, तो भी ग्राहत साहसी शूरों की सेवा कर ही सकता है। आप जानते हैं कि मैं थोड़ा चिकित्सा का ज्ञान भी रखता हू।

महाराणा रालमल—(खड़े होते हुए) हां, हां, आप चिकित्सा करते हैं। केवल शरीर की हो नहीं, मन और आत्मा की भी। आपके अमृत वचनों से चित्त स्वस्थ होता है।

राजयोगी—महाराणाजी, आप इस समय विश्राम ही करें। इस प्रकार अचानक शंका से उठ खड़ा होना हानिकर है।

महाराणा रायमल—विश्राम ! मेवाड़ के महाराणा के लिए विश्राम असम्भव है। जिस समय सहस्रों मेवाड़ी वीर रणभूमि में अपने प्राणों की ग्राहुतियां दे रहे हैं, उस समय मेवाड़ का महाराणा कायर बनकर अपने डेरे में मुंह

छिपाए बैठा रहे, यह नहीं हो सकता । मेवाड़ के महाराणा के शरीर का अन्तिम रक्तबिन्दु भी अपने साथियों के रक्त में सम्मिलित होने के लिए लालायित है । (सैनिकों से) मेरे लिए घोड़ा मंगवाओ ।

(सैनिक राजयोगी की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखता है ।)

महाराणा रायमल—(सैनिक से) राजयोगी से क्या पूछते हो, इनका शासन धर्म-मन्दिर में चलता है । यह समर-भूमि है । यहां मेरी आज्ञा का पालन करना होगा ।

सैनिक—महाराणाजी युवराज की आज्ञा है कि होश आने पर भी आपको समर-क्षेत्र में न आने दिया जाए ।

महाराणा रायमल—तो अब मेवाड़ के सैनिक युवराज की आज्ञा का पालन करेंगे, महाराणा की आज्ञा का नहीं ।

राजयोगी—महाराणाजी की आज्ञा की अवज्ञा करने का दुस्साहस और धृष्टता कोई मेवाड़ी सैनिक तो क्या, मेवाड़भूमि का कोई भी सपूत नहीं कर सकता, किन्तु आपसे नम्र निवेदन करने का अधिकार तो आपकी सन्तान-तुल्य प्रजा को है ही । युद्धभूमि की चिन्ता करने की आपको इस समय आवश्यकता नहीं है । आपके परम पराक्रमी पृथ्वीराज के नेतृत्व में मेवाड़ी सैनिक अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं । वे प्रलयंकर शंकर के गण के समान विध्वंस का खेल खेल रहे हैं ।

महाराणा रायमल—मुझे अपने मेवाड़ी सैनिकों के अप्रतिम पराक्रम पर अभिमान है राजयोगीजी ! बिना शंकर के शंकर की सेना कैसी ? इस समय मेरा स्थान वहीं है, जहां सहस्रों तलवारें आकाश में चकाचौंध पैदा कर रही हैं । जाओ सैनिक, विलम्ब न करो, मेरा घोड़ा तैयार कराओ ।

राजयोगी—यदि महाराणाजी समर-क्षेत्र में जाना ही चाहते हैं तो अश्व पर नहीं, अपने गौरव के अनुकूल एवम् इस समय की आहत अवस्था के लिए सुविधाजनक, हाथी की सवारी पर ही जाएंगे । (सैनिक से) जाओ, महाराणाजी के लिए हाथी तैयार कराओ ।

(सैनिक का प्रस्थान । इसी समय सैनिक वेश में तारा प्रवेश करती है । उसके हाथ में रक्तरंजित दुधारा है । दूसरे हाथ में ढाल है । तारा आकर राजयोगी और महाराणा के चरणों पर शीश झुकाती है ।)

महाराणा रायमल—बेटा, तुम्हें इस वेश में देखकर मेरी एक आंख रोती है और एक हंसती है ।

तारा—रोती क्यों है महाराणाजी ?

महाराणा रायमल—रोती इसलिए है कि मेवाड़ की कुल-वधुओं को हिंसा का ताण्डव करना पड़ रहा है । मेवाड़ की नारियों को अपने पुत्रों, भाइयों, पतियों एवं पिताओं के पुरुषार्थ पर मानो विश्वास नहीं रहा ।

तारा—ऐसा क्यों कहते हैं महाराणाजी, भारत की क्षत्राणियां सदा से ही प्रत्येक क्षेत्र में अपने स्वामी की सहयोगिनी रही हैं, मृत्यु को वे मां की गोद के समान सुखद समझती रही हैं । हंसते-हंसते जीहर की जाज्वल्यमान ज्वाला में जीवन की आहुति देने वाली पद्मिनी जैसी वीरांगनाएं इसी मेवाड़भूमि में जन्मी हैं । स्वर्गीय महाराणा समरसिंह की पत्नी तेजस्विता की प्रतिमूर्ति, कर्मदेवी, जिन्होंने दिल्ली के बादशाह कुतुबुद्दीन के विरुद्ध मेवाड़ी सेना का नेतृत्व कर अम्बर के निकट उसे पराजित किया था, इसी मेवाड़ की महान् महिला थीं । महाराणाजी, आपकी पुत्रवधू कुछ नया पराक्रम नहीं दिखा रही है, केवल मेवाड़ की परम्परा का पालन कर रही है ।

महाराणा रायमल—तभी तो मैंने कहा, मेरी एक आंख हस रही है । जिस देश की नारियां भी हाथों में शस्त्र लेकर देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए समरभूमि में चण्डी का रूप धारण करती है, उसे कोई भी दास नहीं बना सकता ।

राजयोगी—तारा, आज तुम्हें इस रूप में देखकर भवानी के पुजारी की आंखें तृप्त हो गईं । जान पड़ता है, मेवाड़ के मान की रक्षा करने के लिए मंदिर

में बसने वाली भवानी की प्रतिमा सजीव होकर चली आई है। मैं देवी के चरणों में प्रणाम करता हूँ।

तारा—राजयोगीजी, प्रशंसा के शब्द सुनकर कौन पुलकित नहीं होता, किन्तु मेरा आपसे निवेदन है कि आपकी माया ने पत्थर के सम्मुख मानव का मस्तक झुकवाया है। अपनी वह माया मुझपर न चलाएं। मानव को अपनी ही शक्ति पर विश्वास करने दें। देवी-देवता के भरोसे रहने पर मानव का पुरुषार्थ पंगु हो जाता है और आए दिन सोमनाथ के विध्वंस का दृश्य देखने को मिलता है।

राजयोगी—देवता पुरुषार्थी को ही पुरस्कृत करते हैं, अकर्मण्य और कायर को नहीं। आस्तिकता का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। सोमनाथ का विध्वंस तो अन्धविश्वासी, अकर्मण्य और कायर पुरुषों को एक चेतावनीमात्र था। विधाता के उस सुगम्भीर संकेत को हमें वास्तविक अर्थों में समझना चाहिए।

महाराणा रायमल—निश्चय ही, भाग्यलिपि का अदृश्य लेखक मतवाला नहीं है बेटी। अज्ञात, अनन्त, अलौकिक शक्ति से वरदान पाने के लिए मानव को तप करना पड़ता है; बलिदान देना पड़ता है। जीवन का कठोर संघर्ष भी तप है। जिसमें तप करने की, बलिदान देने की शक्ति का लोप हो जाता है उसपर किसी न किसी रूप में अदृश्य का अभिशाप अवतरित होता है।

तारा—प्रसन्नता की बात है कि मेवाड़ कठिन परीक्षाओं के ताप में तपकर सुदृढ़ होता गया है। विपरीत परिस्थितियों के आंधी-तूफान में उसका साहस पर्वत के समान अडिग रहता रहा है। आज भी मेवाड़ी सेना शत्रु-दल से संख्या में थोड़ी होते हुए भी मेवाड़ के झंडे को ऊंचा कर रही है।

महाराणा रायमल—मालवा और गुजरात की सेनाओं से मेवाड़ ने अनेक बार लोहा लिया है। जिस प्रकार किसी पारावार के ज्वार की उताल तरंगें

चट्टानी तटों से टकरा-टकराकर लौट जाती हैं, उसी प्रकार इस बार भी शत्रु का अभिमान चूर्ण होगा ।

राजयोगी—यह तो ठीक है महाराणाजी, किन्तु एक विभीषण ने लंका की अतुल शक्ति को विफल कर दिया था । सूरजमल का मेवाड़ के प्रति विद्रोह चिन्ता का कारण अवश्य है ।

तारा—सूरजमलजी को मैंने युद्ध करते देखा है । वह भीमकाय मानव-रूप में चलती-फिरती चट्टान, कुम्भकर्ण का अवतार, हाथों में विद्युत् की गति लिए हुए जिधर से तलवार चलाते हुए गुजरते हैं, उधर की सेना काई-सी फट जाती है । प्राणों का मोह त्यागकर वह अपने सजातीय सैनिकों से युद्ध कर रहे हैं ।

महाराणा रायमल—किन्तु, मेरा पृथ्वीराज सूरजमल से कम नहीं है । सूरजमल व्याघ्र है तो वह केसरी है ।

तारा—महाराणाजी, यह आपके पुत्र का ही साहस है, जिसने सूरजमलजी के वेग को रोक दिया है । दोनों भाई दो बलवान् हाथियों की भांति एक दूसरे पर टूट पड़े थे । वह दृश्य अपूर्व था । खड्ग-संचालन में दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने का यत्न करते, किन्तु दोनों एक दूसरे के प्रहारों को विफल कर देने थे । मेरा जी चाहता था, वहीं खड़ी रहकर मेवाड़ के दो राजपुत्रों का, दो भाइयों का संग्राम देखती रहूं ।

राजयोगी—तो तुम यहां क्यों चली आई ?

तारा—युवराज ने आज्ञा दी कि मैं महाराणाजी की संभाल करूं, साथ ही दोनों भाइयों का संग्राम देर तक चल भी नहीं सका; सूरजमलजी ने उनसे टकराते रहना व्यर्थ समझकर अपने घोड़े को वहां से हटा लिया ।

महाराणा रायमल—तो पृथ्वीराज ने सूरजमल का पीछा नहीं किया ?

तारा—नहीं, क्योंकि अपने प्राणों से प्रिय महाराणाजी के हाथी को रणभूमि में न देखकर मेवाड़ी सेना में एक निराशा की लहर दौड़ गई थी । उस निराशा-पूर्ण वातावरण को दूर करना आवश्यक था । उन्होंने सामन्तों को एकत्र कर उन्हें महाराणाजी के सुरक्षित होने का समाचार दिया और उनके

द्वारा सम्पूर्ण सेना में पहुंचाया । उसके पश्चात् जोर से रणभेरी बजवाई एवं अपने चुने हुए साथियों को लेकर प्रबल वेग से शत्रु के हरावल को चीरते हुए मध्य तक चले गए ।

राजयोगी—पृथ्वीराज वास्तव में वीरता में अद्वितीय है । फिर क्या हुआ ?

तारा—वह चारों ओर से शत्रुओं से घिर गए, किन्तु उनके शरीर पर किसी शत्रु की तलवार का पहुंच सकना असम्भव था । जैसे मृगों में सिंह संहार-लीला करता हुआ निर्द्वन्द्व घूमता है, उसी प्रकार वह शत्रु-समूह में विचरण कर रहे थे । यह दृश्य देखकर मेवाड़ी सैनिकों में उत्साह का तूफान उमड़ा और वे भी प्रबल वेग से शत्रु पर टूट पड़े ।

महाराणा रायमल—इस समय रणभूमि में मेरा पहुंचना आवश्यक है । मुझे देखते ही सेना को नवीन बल प्राप्त होगा । दूसरी बात यह भी है कि पृथ्वी-राज पर इस समय अनुशासन रखने की भी आवश्यकता है । कहीं आवेश में आकर वह इतना आगे न बढ़ जाए कि अपनी सेना से सर्वथा अलग हो जाए । मुझे जाना चाहिए । तुरन्त ही जाना चाहिए । मेवाड़ के कुल-दीपक की सुरक्षा के लिए मुझे तुरन्त जाना चाहिए ।

(नेपथ्य में 'मेवाड़ की जय' 'महाराणा रायमल की जय' 'युवराज पृथ्वीराज की जय' का नाद सुनाई देता है ।)

राजयोगी—सुना महाराणाजी, युवराज शत्रुसेना को परास्त कर मेवाड़ की कीर्ति को चार चांद लगाते हुए चले आ रहे हैं ।

महाराणा रायमल—हे भगवान् एकलिंग, तुम्हारी ही अपार अनुकम्पा से आज फिर मेवाड़ के यश की रक्षा हो सकी है ! तुम्हारे तृतीय नेत्र की ज्योति की एक-एक किरण प्रत्येक मेवाड़ी के हृदय में समाविष्ट होकर उसे चिर प्रज्वलित रखती है ।

(पृथ्वीराज का प्रवेश और राजयोगी के चरणों को छूना)

राजयोगी—(मस्तक पर हाथ रखते हुए) तुम्हारी कीर्ति अमर हो पृथ्वीराज !

(पृथ्वीराज महाराणा के चरण छूता है ।)

महाराणा रायमल—बेटा, (पृथ्वीराज को गले लगा लेते हैं) । उनकी आंखों में

आनन्दाश्रु भर आते हैं और कण्ठ गद्गद् हो जाता है ।) आज तुमने मेवाड़ की लाज रख ली । आज मेरा हृदय आनन्द से फटा जा रहा है । राम जब लंका जीतकर आए थे, तब कौशल्या को जैसा आनन्द प्राप्त हुआ था वैसा ही आज मुझे प्राप्त हो रहा है । आज मेवाड़भूमि अपने सपूतों का विक्रम देखकर फूली नहीं समाती । पिताजी ने चित्तौड़ में कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया है, आज उसके गर्व का कोई ठिकाना नहीं है । आज चित्तौड़दुर्ग का प्रत्येक शिलाखण्ड आनन्दातिरेक से रोमांचित हो उठा होगा ।

राजयोगी—किन्तु पृथ्वीराज, मेवाड़ी सेना को सहसा इतनी जल्दी विजय प्राप्त कैसी हो गई ? सूरजमल सरलता से मैदान छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं है ।

पृथ्वीराज—हां, सूरजमल सरलता से हार मानने वालों में नहीं है । हमारी विजय तो निश्चित थी, किन्तु यह अधिक बलिदान मांगती । आज किसी रहस्यमयी अज्ञात शक्ति ने हमारी विजय सरल कर दी । दोनों सेनाएं घमासान युद्ध में गुथी ही थीं कि शत्रुसेना पर किमीने पीछे से अप्रत्याशित बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी । फिर क्या था, शत्रुसेना में भगदड़ मच गई । शत्रु-सैनिक शरद्कालीन वादलों की भांति तिरोहित हो गए ।

महाराणा रायमल—(राजयोगी से) जान पड़ता है, आपने ही गुप्तरूप से यह आयोजन किया था ।

राजयोगी—महाराणाजी, मुझमें इतनी संगठित शक्ति, सूझबूझ और रण-चतुराई कहां ? जान पड़ता है, मेवाड़ पर कृपा रखने वाली रणचण्डी ने यह खेल खेला है ।

(निवेद्य में 'मेवाड़ के महाराणा की जय' का तुमुल नाद गूंजता है ।)

पृथ्वीराज—मेवाड़ की विजयी सेना महाराणाजी के दर्शन चाहती है ।

महाराणा रायमल—मैं भी अपनी वीर विजयी सेना को देखकर अपने नेत्रों को सफल करना चाहता हूं और चित्तौड़ पहुंचकर सबको यथायोग्य पुरस्कृत भी करूंगा ।

(महाराणा प्रस्थान करते हैं, उनके पीछे सब जाते हैं ।)

(पट-परिवर्तन)

पांचवां दृश्य

(स्थान—मांडूगढ़ में मालवा के सुलतान के अतिथि रूप में सूरजमल जिस भवन में ठहरा हुआ है उस भवन के और प्राकार के मध्य का खुला मैदान । समय—सन्ध्या । ज्वाला अकेली किसीकी प्रतीक्षा में खड़ी है, खाली समय को व्यतीत करने के लिए एक गीत गा रही है, जिससे उसके अन्तर की भावनाएं व्यक्त होती हैं ।)

ज्वाला—(गीत)

प्रसूनों को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मैं ।

जगत से प्यार के दो,
बोल भी तो मिल नहीं पाए ।
नरक जग को बना दूंगी,
घृणा का राग बनकर मैं ।

प्रसूनों को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मैं ।

पिलाया विष मुझे जग ने,
वही तो मैं उगलती हूं ।
डसूंगी अब मनुजता को,
भयानक नाग बनकर मैं ।

प्रसूनों को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मैं ।

लहू का घूंट पी-पीकर,
हुआ पागल हृदय मेरा ।
धरा की लालिमा से अब,
भरूंगी पाग बनकर मैं ।

प्रसूनों को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मैं ।

(सूरजमल का प्रवेश जो आंत-क्लांत एवं आहत अवस्था में है ।)

सूरजमल—हम स्वयं ही लालसाओं की लपलपाती हुई लपटों में भस्म हो जाएंगे ज्वाला ! किसीको भस्म करने का हमारा दुःस्वप्न कभी चरितार्थ नहीं होगा ।

ज्वाला—अब परिणाम के सम्बन्ध में सोचना ही व्यर्थ है । प्राणों में जिस प्रतिहिंसा की ज्वाला ने अपना निवास बना लिया है उसे प्राणों से निकाल देने का कोई उपाय नहीं है, और उसे प्राणों में पाले हुए जीवन का पथ स्वाभाविक रूप से चल सकना भी असम्भव है । संघर्ष से मुंह मोड़ लेने से तो मरने के पहले ही मर जाना पड़ता है । मृत्यु का जीवन जीना तुम्हारी सहोदरा ज्वाला को स्वीकार नहीं है । अगर तुम थक गए हो तो भी ज्वाला अभी थकी नहीं है । उसकी सग्राम करने की साध अभी पूरी नहीं हुई ।

सूरजमल—थकना तो सूरजमल भी नहीं जानता, किन्तु सत्य को अस्वीकार करने से भी कोई लाभ नहीं है । पृथ्वीराज के प्रचण्ड पराक्रम ने हमें पूर्णतः परास्त कर दिया है एवं मेवाड़ के सैनिकों में उसने नई प्रेरणा भर दी है । मेवाड़ के राजपूत उसे इष्टदेव के समान वन्दनीय मानने लगे हैं । उसके संकेत पर किसी भी क्षण वे अपने प्राणों की बाजी लगाने को प्रस्तुत हैं । मेवाड़ को ऐसा नेतृत्व प्राप्त होना सौभाग्य की बात है ।

ज्वाला—पृथ्वीराज की वीरता में मुझे किसी प्रकार का संदेह नहीं है । निश्चय ही उन्होंने गहलोत-वंश की परंपरा को पाला है, किन्तु दादा भाई, तुम्हारी धमनियों में भी भगवान राम के वंशजों का रक्त प्रवाहित है । तुमने पृथ्वीराज से कम पराक्रम नहीं दिखाया । मैं भी तो रणभूमि में एक सैनिक के रूप में उपस्थित रही थी । मैंने तुम्हारा और पृथ्वीराज का द्वन्द्व देखा था, मानो कुरुक्षेत्र में अर्जुन और कर्ण अपने रण-कौशल की परीक्षा कर रहे हों । आज तुम्हारे हृदय में अपने आपको हीन समझने को मनोवृत्ति क्यों उपस्थित हुई ?

सूरजमल—सूरजमल पृथ्वीराज से साहस, शक्ति एवं रण-कौशल में हीन

है, ऐसा तो उसने कभी अनुभव नहीं किया, लेकिन ज्वाला, उसे मेवाड़ के राजसिंहासन पर आसीन हो सकने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। मैं समझता था, मेवाड़ के सामन्तों में कुछ हमारे पृष्ठ-पोषक हैं। उनमें से कुछ इस युद्ध में तटस्थ भी रहे; लेकिन तुम जानती हो, उदय होते हुए सूर्य को सभी नमस्कार करते हैं। उधर देखो, अस्तंगत रवि हमारे भाग्य की भविष्यवाणी कर रहा है। ज्वाला, डूबते हुए सूर्य को कोई प्रणाम नहीं करता।

ज्वाला—क्षितिज के पार अंधकार है या प्रकाश, इसे कौन जानता है? पृथ्वी-राज का उद्दण्ड पराक्रम उस पुच्छल तारे के समान है, जो अपने महातेज से कुछ क्षणों के लिए संसार को चकित कर देता है, किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् वह तिरोहित भी हो जाता है। मुझे विश्वास है कि पृथ्वीराज का आवेश ही उसकी जीवन-लीला को असमय में समाप्त करने को बाध्य करेगा। और तब सूरजमल के भाग्यरवि का उदय होगा। उदय के पश्चात् अस्त और अस्त के पश्चात् उदय, यह प्रकृति का नियम है।

सूरजमल—किन्तु, बहिन, मान लो, भारत में जो विदेशी शासक हैं, उनकी कृपापूर्ण सहायता से मैं मेवाड़ का महाराणा बन भी गया, तब भी क्या मेवाड़ के जनमानस में स्थान पा सकूंगा? कदापि नहीं! आज महाराणा रायमल और पृथ्वीराज के प्रति मेवाड़ के जनसाधारण का अटूट विश्वास है और उनका विरोध करने वाले के प्रति चाहे वह न्याय के पथ पर हो, उनके हृदय में अत्यन्त घृणा और द्वेष का भाव है। राजा बन जाने पर भी मैं प्रजा के हृदय से इस घृणा के भाव को दूर नहीं कर सकूंगा। ज्वाला, जिस राजा से प्रजा घृणा करती हो, उसकी सत्ता बालू के दुर्ग के समान है। ज़रा से धक्के से वह धराशायी हो जाता है। हमारे सामने पिताजी का ही उदाहरण उपस्थित है। वह अपने पिता की हत्या कर मेवाड़ का राजसिंहासन हस्तगत करने में सफल हुए, किन्तु जनसाधारण एवं न्यायप्रिय सामन्तों ने उन्हें मेवाड़ का महाराणा

स्वीकार नहीं किया। अपने समर्थकों की संख्या बढ़ाने के लिए उन्होंने अनेक व्यक्तियों को जागीरें दीं; अनेक जागीरदारों को लगभग स्वतन्त्र कर दिया; मेवाड़ राज्य के इलाके मालवा के सुल्तान, गुजरात के बादशाह और दिल्लीपति को भेंटकर उनकी सहायता प्राप्त की, किन्तु अन्त में राज्य-लिप्सा की ज्वाला में उन्हें स्वयं ही भस्म हो जाना पड़ा।

ज्वाला—क्योंकि उनके पक्ष में कोई नैतिक आधार नहीं था। स्वयं उनके पुत्र और पुत्री ने उनका विरोध किया। किन्तु हमारे मामले में यह बात नहीं है। मेवाड़ के राजमहल ने सूरजमल के साथ अन्याय किया है और राज-महल के अन्तःपुर ने ज्वाला का अपमान किया है। प्रतिशोध लेना मानव का कर्तव्य है दादा भाई ! तुम्हारे मन में दुविधा हो सकती है, लेकिन तुम्हारी बहिन का मन तो चट्टान की भांति दृढ़ है। वह दुविधा में नहीं पड़ सकती। उसे मिटना होगा तो मिट जाएगी। इतिहास उसे कुल के साथ वैर करने वाली कहे तो कह ले, किन्तु यह न कह सकेगा कि उसने अपमान को चुपचाप सह लिया। गधे की भांति अपमान की मार सहते हुए जीवन के पथ पर गर्दन झुकाए चले जाना मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है।

सूरजमल—गृहयुद्ध की ज्वाला का कोई अन्त नहीं है ज्वाला ! यह सर्वनाश की होली शताब्दियों तक, पीढ़ी दर पीढ़ी, खेली जा सकती है।

ज्वाला—हां भैया, इस होली की ज्वाला को समाप्त नहीं होने देना है। होलिका अथवा प्रह्लाद दोनों में से एक को जलकर क्षार होना होगा।

(सहसा यमुना का प्रवेश। वह इस समय अति मृत्युवान एवं आक-
षक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है, जिससे उसके सहज सौंदर्य को चार आंखें
लग गए हैं।)

यमुना—राजकुमारी को यमुना प्रणाम करती है।

ज्वाला—बहुत बड़ी उम्र है तेरी ! मैं तेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी।

सूरमल—(ज्वाला से) यह कौन है ?

ज्वाला—नहीं पहचाना तुमने ? अच्छा हुआ, पहले पहचान पाते तो सम्भवतः

संग्राम में तुम्हारा मन नहीं लग पाता ।

सूरजमल—ज्वाला, तुझे अपने बड़े भाई पर आक्षेप करते हुए लज्जा नहीं आती ? कम से कम एक भद्र महिला का सम्मान तो तुझे करना ही चाहिए ।

ज्वाला—किन्तु, यदि यह भद्र महिला इस प्रकार के आक्षेपों से प्रसन्न होती हो तो इसमें आपत्तिजनक बात ही क्या हो सकती है ? जिस नारी का जीवन पुरुषों का मनोरंजन करना ही हो, उसके प्रति भद्रकुल की नारी के समान सम्मान प्रदर्शित करना मूर्खता है ।

सूरजमल—बहिन, तुम अपने ऊपर ज़रा से व्यंग्य और अविश्वास की बात को सुनकर इतनी तिलमिला उठी थीं कि मेवाड़ में तुमने भयंकर गृह-कलह को प्रज्वलित कर दिया । फिर तुम नारी के स्वाभिमान को समझने में भूल क्यों करती हो ? हो सकता है, इस नारी का जीवन किसी कारण पुरुषों की वासना का खिलौना बन गया हो, फिर भी हमें उसके सम्मान की रक्षा करनी चाहिए । मैं पूछता हूँ, यह नारी है कौन ?

ज्वाला—यह भिखारिन है, जिसे मैंने दिल्ली में बन्दिनी बनाया । एक बार तुम इसे देख चुके हो, किन्तु जब-जब यह तुम्हारे सामने आई है, नए-नए रूप में आई है । वे रूप इसके स्वाभाविक रूप नहीं थे । दिल्ली के राज-दरबार में जब इसकी कला, सौन्दर्य और यौवन के प्रदर्शन ने मुझे प्रथम बार चकित किया था, तुम अनुपस्थित थे । इसलिए इसके स्वाभाविक स्वरूप से अपरिचित हो । आज इसे इसके अभिराम रूप में देखकर तुम चकित हो गए हो ।

सूरजमल—तो यह वही दिल्लीपति की गुप्तचर है ?

ज्वाला—हां, लेकिन अब यह ज्वाला की अन्तरंग सखी है । यह मेरा ब्रह्मास्त्र है । जब तुम भी अपने शस्त्र छोड़ देने का विचार कर रहे हो, तब ज्वाला को इसी शस्त्र का प्रयोग करना आवश्यक होगा ।

सूरजमल—किस पर ?

ज्वाला—और किस पर, पृथ्वीराज पर ।

सूरजमल—शंकर का तप भंग करने के प्रयास में मदन को भस्म होना पड़ा था ।
पृथ्वीराज किस धातु का बना है, आश्चर्य है, इसे समझने में तू भूल करती है ।

यमुना—मुझे खेद इस बात का है, राजकुमार, कि उस उद्दण्ड पुरुष को अपने चरणों पर झुकाने की साध मैं पूर्ण न कर सकूंगी ।

ज्वाला—क्यों ? क्या तूने मेरा साथ न देने का निश्चय किया है ?

यमुना—नहीं राजकुमारी, नरक की ज्वाला में भी आपके साथ ही जलने के लिए मैं बचनबद्ध हूँ । छल करना जिन नारियों का स्वभाव बन जाता है, उनके भी कुछ नैतिक नियम होते हैं । राजकुमारी, आपसे मेरा जीवन-मरण का सम्बन्ध हो गया है । यह बात अलग है कि आप ही मुझसे छुटकारा चाहती हों ।

ज्वाला—मैं तो तुझसे छुटकारा नहीं चाहती, किन्तु यह भी याद रख कि यदि तूने मुझसे छुटकारा चाहा तो अपने जीवन में भी छुटकारा लेना पड़ेगा ।

सूरजमल—फूल को तलवार से काटने में क्या आनन्द प्राप्त होगा ज्वाला ?

ज्वाला—(मुस्कराकर) दादा भाई, मेरे एक रसीले वाक्य से आप तिलमिला उठे थे, किन्तु मैं देखती हूँ कि रूप की किरणों तीर की तरह तुम्हारे अन्तर्प्रदेश में प्रवेश कर रही है, तभी नारी-देह में तुम्हें फूल के दर्शन होने लगे हैं ।
(यमुना से) मुझे विश्वास होता है कि जो नारी सूरजमल के हृदय को कोमल भावनाओं से भर सकती है, वह पृथ्वीराज पर भी जादू चला सकती है ।

यमुना—किन्तु पृथ्वीराज के पास पहुँच सकने की शक्ति यमुना में नहीं है ।

ज्वाला—मेवाड़ का राजकुल कला का प्रेमी, प्रशंसक और साधक रहा है । महाराणा कुम्भा भारत के प्रसिद्ध कलाप्रेमी और कला-साधक थे । उनका स्वभाव मेवाड़ के राजकुल में कुछ न कुछ बना हुआ है । तू अपने रूप पर अविश्वास कर सकती है, किन्तु तुझे विश्वास होना चाहिए कि तेरी कला तो तुझे पृथ्वीराज तक पहुँचा सकती है ।

यमुना—राजकुमारी, पंचभूत से निर्मित मनुष्य का शरीर छोड़े बिना मैं अपनी कला को लेकर पृथ्वीराज के पास नहीं पहुंच सकती ।

सूरजमल—क्यों, क्या वह देवता की श्रेणी में है ?

यमुना—हां राजकुमार, अब वह देवलोकवासी हैं ।

सूरजमल—क्या कहा तुमने ? अभी-अभी तो उसने अपने पौरुष की चकाचौंध से देवताओं को भी चकित किया था । अभी तो उसकी तलवार का रक्त भी नहीं सूखा होगा । अभी तो उसके तलवार से हुए मेरे घाव भी नहीं भरे हैं ।

यमुना—राजकुमार, भाग्य के खेल आश्चर्य में डाल देते हैं । बात विश्वास करने योग्य नहीं है, किन्तु यह सत्य है कि अब पृथ्वीराज इस संसार में नहीं है ।

सूरजमल—क्या हुआ उसे ?

यमुना—राजकुमारी की आज्ञा पाकर मुझे अपने जीवन का एक बहुत ही विस्मयकारक नाटक खेलना पड़ा । मैं सिरोही-नरेश और उनकी रानी—मेवाड़ की राजकुमारी, पृथ्वीराज की सहोदरा आनन्ददेवी के मध्य सेज का कांटा बनकर गई थी । मैं अपने उद्देश्य में सफल हुई । सिरोही-नरेश ने अपनी रानी की अवहेलना की और आनन्ददेवी आखिर गहलोत-वंश की पुत्री है, वह अवहेलना को कैसे सहती ? बात बिगड़ती ही गई ।

ज्वाला—मैंने भी पृथ्वीराज के कानों में सिरोही-नरेश द्वारा आनन्ददेवी के प्रति दुर्व्यवहार की भनक डाल दी थी ।

यमुना—इस युद्ध से अवकाश पाते ही पृथ्वीराज ने अपने बहनोई सिरोही-नरेश को घर दबाया । स्वयं आनन्ददेवी ने अपने सुहाग की भीख न मांगी होती तो पृथ्वीराज सहोदरा की मांग का सिन्दूर पोंछ डालता ।

ज्वाला—किन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि उसने तुम्हें कैसे जीता छोड़ दिया ?

यमुना—पृथ्वीराज मुझे पा जाता तो निश्चय ही मेरे शरीर के हजारों टुकड़े कर डालता, किन्तु यमुना तो भुस में अंगारे डालकर अन्तर्भ्रान्त हो गई ।

सूरजमल—निश्चय ही, तूने काम तो ऐसा ही नीचतापूर्ण किया है, बल्कि तुझे अधमरा करके शिकारी कुत्तों के आगे छोड़ देना चाहिए ।

यमुना—तो यह साध पूरी कर लीजिए ।

सूरजमल—जो सबका न्याय करता है, वह एक दिन तुझे भी दण्ड देगा, ज्वाला को भी और सूरज को भी ।

ज्वाला—तूने यह तो बताया ही नहीं कि पृथ्वीराज की मृत्यु कैसे हुई ?

यमुना—बताऊंगी, सब कुछ बताऊंगी, लेकिन वह एक लम्बी कहानी है । भीतर चलिए, आराम से बैठकर सुनिए । अपना कलेजा ठण्डा कीजिए । अपने दादा भाई को महाराणा बनाने के लिए आगे की योजना बनाइए; सारे वीर पुत्रों को गंवाकर महाराणा रायमल तो अब बावले-से हो गए हैं । अब उनमें किसीके आक्रमण को रोक सकने की शक्ति नहीं रही ।

सूरजमल—यह तो ठीक है, किन्तु अब सूरजमल मेवाड़ में किससे लड़ेगा ? दुर्बल, जराजीर्ण महाराणा रायमल की काया पर सूरजमल की तलवार प्रहार करे, यह तो उसकी आत्मा को स्वीकार नहीं है । हाँ, अपनी जवानी में काकाजी पृथ्वीराज के समान ही उद्दण्ड और तूफानी योद्धा थे और इस युद्ध में मैंने देखा कि इस बूढ़े सिंह में अपूर्व साहस और शौर्य है; भले ही शक्ति न हो, लेकिन अब अपने एकमात्र अवशेष पुत्र को गंवाकर उनका दिल टूट गया होगा ।

यमुना—जान पड़ता है, रक्त की ममता ने आपको विचलित कर दिया है ।

ज्वाला—यमुना, प्रतिहिंसा के नशे ने हमें बेहोश भले ही कर रखा हो, किन्तु फिर भी हममें रक्त की ममता कभी-कभी जाग ही पड़ती है । मेरे अन्तर में भी जान पड़ता है कि कोई भीतर ही भीतर हथौड़े मार रहा है ।

यमुना—ऐसा ही पश्चात्ताप होता है तो व्यर्थ ही आपने मुझसे यह अनर्थ करा डाला, किन्तु आप बड़े लोग हैं; पतन के पथ पर चाहे कितनी ही दूर तक चले जाएं, आपको वापस लौट आने की सुविधा प्राप्त है । मेवाड़ पर

गिरने वाला वज्र मेवाड़ की ढाल भी बन सकता है । कठिनाई तो हम लोगों के भाग्य में हैं । आप जैसे बड़े आदमियों के हाथ का खिलौना बनने वाली यमुना जैसी नारी क्या सत्पथ पर चलने का अधिकार पा सकती है ?

सूरजमल—क्यों नहीं, तू भली बनना चाहे तो समाज में प्यार और आदर पा सकती है ।

यमुना—नहीं, यमुना ने भली बनने का यत्न करके देख लिया, किन्तु जब उसके सद्प्रयत्नों पर समाज के निष्ठुर प्रहार हुए तभी वह समाज के प्रति विद्रोहिणी बनी ।

ज्वाला—किन्तु तेरा यह ख्याल करना कि हम लोगों को भी अब रास्ता बदल सकने की सुविधा प्राप्त है, गलत है । मेवाड़ सूरजमल और ज्वाला को क्षमा नहीं करेगा । मेवाड़ में यदि उदारता होती, तो हमें यह रास्ता पकड़ना ही क्यों पड़ता ।

यमुना—तब आप रास्ता बदलना नहीं चाहतीं ?

ज्वाला—चाहने से भी जो बात सम्भव नहीं है, उसकी चाह क्यों की जाए ? गिरि-शिखर पर पहुँचा हुआ व्यक्ति जब पैर फिसल जाने से लुढ़कता है तो उसका तलहटी तक पहुँचना ही स्वाभाविक है । मेवाड़ के राजमहल का दंभ संग्रामसिंह को गंवाकर पृथ्वीराज और जयमल को मृत्यु का ग्रास बनाकर भी समाप्त नहीं हुआ । वह अभी बहुत-से बहुमूल्य प्राणों की बलि लेगा । चलो श्रन्दर, मुझे सिरोही-नरेश और पृथ्वीराज के द्वन्द्व का पूर्ण वृत्तान्त बताओ । इसके पश्चात् दादा भाई को मेवाड़ के सिंहासन का अधिपति बनाने की योजना निश्चित की जा सकेगी ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

(स्थान—महाराणा रायमल के राजमहल में महारानी शृंगारदेवी का शयन-कक्ष । समय—सन्ध्या । प्रथम अंक के दूसरे दृश्य, दूसरे अंक के पाँचवें दृश्य और तीसरे अंक के पहले दृश्य में इस कक्ष की जो भव्य, मनोरम एवं विलासितापूर्ण साजसज्जा थी, उसमें बहुत परिवर्तन दिखाई देता है । पर्यंक वही है, किन्तु उसपर एक दुग्ध-धवल चादर बिछी हुई है । दीवारों पर शृंगार-रसपूर्ण चित्रों की बजाय हिन्दूधर्म-कथाओं से सम्बन्धित चित्र सुशोभित हैं । कुसुम्बा पीने का पात्र अब दिखाई नहीं देता । कक्ष की सजावट से ही प्रकट होता है कि शृंगारदेवी के जीवन को वैभव-विलास से वंचित होकर सादगी और धार्मिकता से आसक्ति हुई है । वीणा आज भी उसके जीवन से अलग नहीं हुई है, लेकिन उसके स्वर बदल गए हैं । परदा उठता है तो शृङ्गारदेवी बंठी हुई वीणा बजाती दिखाई देती है । उसके वस्त्र भी सादे, किन्तु चांदनी की तरह उजले हैं । वह श्वेत वस्त्रों में साक्षात् सरस्वती जान पड़ती है । महाराणा रायमल प्रवेश करते हैं, जो राजसी पोशाक में हैं, किन्तु आते ही मस्तक के मुकुट को पर्यंक पर फेंक देते हैं एवं खड्ग को भी कमर से निकालकर फर्श पर डाल देते हैं ।)

महाराणा रायमल—(पर्यंक पर बैठते हुए) महारानी, सरस्वती की प्रतिमूर्ति मत बनो । इस पवित्र वेश में देखकर तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है, किन्तु हमारा सम्बन्ध देवता और पुजारी का नहीं है ।

शृंगारदेवी—(वीणा बजाना बन्द करके) सांसारिक नातों को याद करते रहने की साध क्या महाराणाजी के हृदय में अब भी शेष है ? इस लोक को भूलकर अब तो हमें परलोक की मुधि लेनी चाहिए । भगवान् का.....

महाराणा रायमल—(बात काटकर) भगवान् ! कहां है भगवान् ! शृङ्गारदेवी,

भगवान् होता तो क्या हमारे तीन-तीन पुत्र हमसे छिनते ? कौन-सा पाप किया है मेवाड़ के महाराणा ने जो उसपर आकाश से वज्र पर वज्र टूट रहे हैं । कहते हैं, क्षत्रिय का कलेजा पत्थर का होता है और सचमुच आज तक रायमल पत्थर की भांति निर्मम, कोमल भावनाओं से शून्य रहा है । उसके जीवन में कोमलता केवल शृङ्गारदेवी के कक्ष में आने पर जाग्रत होती थी, किन्तु पृथ्वीराज के मरण के प्रहार ने उसकी निर्ममता और कठोरता की चट्टानों को चीर डाला है ।

शृङ्गारदेवी—महाराणाजी, इसमें तो सन्देह नहीं कि हमपर ही क्या सम्पूर्ण मेवाड़ पर विधाता का वज्र टूटा है । जब संग्रामसिंह मेवाड़ को त्यागकर चले गए थे और आपने पृथ्वीराज को निर्वासित कर दिया था, तब शृङ्गारदेवी ने भालारानी के मातृ हृदय की वेदना को अनुभव नहीं किया था, अपितु एक पैशाचिक आनन्द प्राप्त किया था । उसके इसी पाप के कारण उसकी गोद से उसका पुत्र छीन लिया गया । उस दिन ही उसने पहली बार समझा कि पुत्र का वियोग माता के लिए क्या होता है । इसके पश्चात् जब पृथ्वीराज के अकाल दुःखद देहावसान का समाचार उसने पाया तो उसे जयमल की मृत्यु में भी अधिक दुःख हुआ । सचमुच उस समय उसे यह जीवन भार जान पड़ा था ।

(यह कहते हुए शृङ्गारदेवी उठती है और वीणा खड़े एक कोने में रख देती है ।)

महाराणा रायमल—और शृङ्गारदेवी, मेवाड़ के महाराणा के पूर्ण निश्चय कर लिया है कि वह अब जीवन के बोझ को उतारकर फेंक देगा ।

(शृङ्गारदेवी महाराणा रायमल के पास बैठकर अपना मस्तक उनके घुटनों पर रखती है ।)

शृङ्गारदेवी—जीवन-धन ! ऐसी अशुभ बात मुंह से न निकालिए । विपत्तियों में मनुष्य की परीक्षा होती है । जो दीपक जलने के लिए जलाया गया है, उसे असमय में बुझ जाने का अधिकार नहीं है । भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध हमें कुछ करने की कामना नहीं करनी चाहिए । जब तक सांसों का

धागा अदृश्य के संकेत से स्वयं नहीं टूटता, हमें अपना कर्त्तव्य पालते जाना है—धैर्य के साथ, विश्वास के साथ ।

महाराणा रायमल—हां शृंगारदेवी ! मेवाड़ का महाराणा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहेगा और कर्त्तव्य का पालन करते हुए ही असह्य बोग को उतार फेंकेगा ।

(महाराणा उठकर खड़े हो जाते हैं और बेचैनी से इधर-उधर कदम रखते हैं ।)

महाराणा रायमल—संसार देखेगा कि सूर्यवंशावतंश महाराणा रायमल का जीवन-दीप अन्तिम समय अपने अपूर्व प्रकाश से भगवान् भास्कर को भी चकित कर रहा है । (फर्श पर पड़े हुए खड्ग को उठाते हैं ।) यह खून का प्यासा खड्ग अन्तिम बार रक्त में स्नान करेगा ।

शृंगारदेवी—आप क्या कह रहे हैं, क्या मेवाड़ की भूमि और भी रक्त की प्यासी है ?

महाराणा रायमल—भूमि की प्यास कहीं मिटती है ? ग्रीष्मऋतु की तपन भूमि को प्यासी बना देती है, तब मेघ धिरते हैं, बरसते हैं, भूमि तृप्त होती है । किन्तु फिर यही क्रम चलता है । इसी प्रकार प्रत्येक देश में अत्याचार के ताप से भूमि रक्त की प्यासी हो उठती है, तब युद्ध के बादल धिरते हैं, रक्त की वर्षा होती है । यदि रक्त नहीं बरसे तो स्वाधीनता, स्वाभिमान, सुख और वैभव की खेतिया हरी नहीं रह सकतीं । मेवाड़ में फिर रण के घन धिर आए हैं, फिर रक्त की भयानक वर्षा होगी ।

शृंगारदेवी—मेवाड़ में फिर रण के घन धिर आए हैं, फिर रक्त की भयानक वर्षा होगी । अनेक जयमल और पृथ्वीराज अपनी माताओं की गोद सूनी कर, पिताओं को निराशा के अन्धकार में डुबाकर चलें जाएंगे ।

महाराणा रायमल—इतना ही नहीं, अनेक पिता अपने पुत्रों को अनाथ बनाकर वीरगति पाने का गौरव लूटेंगे ; अनेक पति अपने हाथ से अपनी प्राणप्रिया पत्नियों की मांग के सिन्दूर पोंछ डालेंगे ; चीत्कार और करुण क्रंदन से सम्पूर्ण देश का वातावरण क्षुब्ध हो जाएगा ।

शृंगारदेवी—विनाश के इस दारुण दाह को फिर से प्रज्वलित करने वाला कौन निष्ठुर है ?

महाराणा रायमल—और कौन, हत्यारे ऊदाजी की संतान—वही सूरजमल, वही मालवा का सुलतान, मेवाड़ का चिरशत्रु, जो मेवाड़ से सतत पराजित होता रहा है। जिसपर मेवाड़ ने सदा ही कृपा की, वही कृतघ्न अब पुत्र-वियोग से व्यथित मेवाड़ के महाराणा को शक्तिहीन-जर्जर मानकर भूखे भेड़िये की तरह टूटने को आतुर हो उठा है।

शृंगारदेवी—किन्तु महाराणाजी, क्या कोई सूरजमल को रास्ते पर नहीं ला सकता। अब जबकि हमारे कुल-दीपक बुझ चुके हैं, सूरजमल को ही एक न एक दिन बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर बैठने का अधिकार प्राप्त होगा। तब उसे व्यर्थ ही उतावला होने की आवश्यकता क्या है ?

महाराणा रायमल—सूरजमल बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर बैठने का अधिकार कभी नहीं पा सकता। रायमल के खड्ग के प्रचण्ड प्रहार ने हत्यारे ऊदाजी को मेवाड़ की पवित्र राजगद्दी को अपवित्र नहीं करने दिया। वह उस हत्यारे के पुत्र को भी, जिसने एक दिन जन्मभूमि के प्रेम का स्वांग रचा था, किन्तु जो अब अपने पिता के पदचिह्नों पर तेजी से भाग रहा है, गद्दी पर नहीं बैठने देगा। रायमल के पुत्रों ने ऊदाजी के पुत्र की काली करतूतों का दंड उसे दिया है, किन्तु आज उनके न रहने पर प्रपंची भूखे भेड़िये मस्तक उठाने लगे हैं। आज अपने नौजवान पुत्रों के अभाव में इस बूढ़े सिंह को इनका कलेजा फाड़ना होगा।

(एक दासी का प्रवेश और महाराणा को झुककर अभिवादन करना)

दासी—अन्नदाता की जय हो ! राजयोगीजी महाराणाजी के दर्शन करने आए हैं।

शृंगारदेवी—इस समय ?

महाराणा रायमल—मेवाड़ पर जब-जब संकट के बादल मंडराते हैं, मेवाड़ के हितैषी व्याकुल होकर उसके पास दौड़ पड़ते हैं। (दासी से) राजयोगीजी को आदर सहित ले आओ।

बासी—जो आज्ञा !

(बासी का प्रस्थान)

शृंगारदेवी—क्या राजयोगीजी भी सूरजमल को समझा-बुझाकर सत्पथ पर नहीं ला सकते ? सूरजमल से अधिक भयानक ज्वाला है, किन्तु उसकी एक दुर्बलता कहो या अच्छाई कहो, यह है कि वह धर्म में श्रद्धा रखने वाली नारी है; कम से कम वह तो राजगुरु के उपदेश का कुछ मान रखेगी ।

महाराणा रायमल—महारानी, राजपूतों के मस्तिष्क को तुम जानती हो । राजगुरु का उपदेश भी ज्वाला और सूरजमल को दुराग्रह से हटा नहीं सकता । यदि कभी उनको सद्बुद्धि आए तो भारतवासियों पर राज्य करने की आकांक्षा रखने वाले विदेशी उनके विवेक को डावांड़ोल कर देते हैं । स्वार्थ और लोभ जब मनुष्य को पतन के पथ पर ले चलते हैं तब उसका अपनी ही गति पर कोई नियंत्रण नहीं रहता । मंत्रचालित यंत्र की भांति वह पाप के पथ पर अविरत अग्रसर होता जाता है ।

(राजयोगी का प्रवेश । महाराणा एवं महारानी राजयोगी के चरण छूते हैं ।)

राजयोगी—आयुष्मान् एवं यशस्वी रहो ।

महाराणा रायमल—राजयोगी इस समय आने का क्यों कष्ट उठाया ?

राजयोगी—मेवाड़ के महाराणा पर विपत्ति का पहाड़ टूटा है, उससे मेवाड़ का जन-मानस व्यथित हो उठा है । राजयोगी विचलित न होता, यह कैसे सम्भव था ? कार्यवश मैं बाहर गया हुआ था, अन्यथा आज से बहुत पहले ही यहां उपस्थित हो जाता ।

महाराणा रायमल—आपकी कृपा के लिए आभारी हूं ।

शृंगारदेवी—राजयोगीजी, आप तो त्रिकालज्ञ हैं । सुनते हैं, आपकी वाणी में स्वयं भवानी बोलती हैं । क्या आप नहीं बता सकते कि मेवाड़-भूमि में रक्तवर्षा कभी समाप्त भी होगी ?

राजयोगी—राठौरी की पुत्री और गहलोतों की राजलक्ष्मी रक्त की वर्षा से भयभीत होती है ? आश्चर्य की बात है महारानी ! जिस देश ने न तो

रक्त दिया है न रक्त लिया है वह प्राणहीन है। वह आन्तरिक विपत्ति एवं बाह्य आक्रमण के हल्के-से झोंके को भी संभाल सकने की सामर्थ्य नहीं रखता। तबतक जगत की श्वास में प्रभुता-प्राप्ति की अभिलाषा एवं राज्यलिप्सा है, जब तक रक्त की वर्षा को बन्द कर देने का कोई उपाय नहीं है। देश को रक्तवर्षा में स्नान कराकर स्वस्थ बनाने का प्रयास ही किया जा सकता है।

महाराणा रायमल—किन्तु राजयोगीजी, मेवाड़ तो रक्त के समुद्र में मानो डूब ही जाएगा।

राजयोगी—आपके मन की आशंका को मैं समझता हूँ, महाराणाजी। मुझे भय था कि महाराणाजी रात-दिन के संग्राम से ऊब न गए हों, पुत्र के वियोग ने उन्हें राजकाज के प्रति उदासीन न कर दिया हो, इसलिए भवानी की आज्ञा से मुझे आना ही पड़ा। शत्रु सुअवसर पाकर घात करने वाला है। कुछ ही दिनों में टिड्डी दल की भाँति रिपुसेना आक्रमण करेगी। हमें शत्रु के मेवाड़भूमि में पदार्पण करने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। आक्रमण करने वाले पर उसके घर में जाकर स्वयं आक्रमण करना चाहिए।

शृंगारदेवी—जब हमारे सारे पुत्र हमसे छिन गए हैं, तब सूरजमल को ही हम अपना पुत्र मान लें तो हर्ज क्या है ?

राजयोगी—वैसे तो मेवाड़ की सारी प्रजा महाराणाजी की संतान है। महाराणा जिसे भी चाहे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकते हैं, किन्तु सूरजमल ने मेवाड़भूमि को विदेशियों से पदमर्दित कराने का प्रयत्न किया है। ऐसे व्यक्ति पर प्रजा की श्रद्धा कैसे होगी ? राजा ऐसा होना चाहिए जिसपर प्रजा श्रद्धा कर सके। मेवाड़ की प्रजा पथभ्रष्ट, विवेकहीन, अभिमानी व्यक्ति को अपना भाग्य-विधाता मानने को प्रस्तुत नहीं है। सूरजमल को देशद्रोह का दंड देना आवश्यक है। जो महाराणा अपने पुत्र जयमल के यौवन के थोड़े-से पथ-विचलित होने को क्षमा नहीं कर सके वह क्या सूरजमल को क्षमा कर देगे ?

महाराणा रायमल—नहीं राजयोगीजी, मैं उसे अवश्य दंड दूंगा। किन्तु एक बात है कि दंडदाता में दंड देने की शक्ति होनी चाहिए। मेवाड़ की शक्ति का क्या हाल है, यह तो आप जानते ही हैं। 'नाम बड़े और दर्शन थोड़े' वाली बात है। पृथ्वीराज के स्वर्गवास ने उसकी कमर ही तोड़ डाली है।

राजयोगी—महाराणाजी, देश की शक्ति उसका राजा अथवा राजकुमार नहीं है, देश की शक्ति उसकी प्रजा है। मेवाड़ की प्रजा आज भी अपने पिता सहस्र महाराणा एवं अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा के लिए जाग्रत है। वह परदेशी शक्तियों से गठ-बन्धन करने वाले देशद्रोहियों को दंड देने में समर्थ है।

महाराणा रायमल—किन्तु, राजयोगीजी, क्या युद्ध की विभीषिका में अपनी प्यारी प्रजा को भोंक देना उचित होगा? सहस्रों सैनिकों की जानें लुटाने की अपेक्षा अपने अहम् को थोड़ा-सा झुक जाने देकर, संधि कर ली जाए तो क्या प्रजा को कोई आपत्ति होगी?

राजयोगी—अवश्य होगा, ऐसी स्थिति में प्रजा विद्रोह करेगी।

भृंगारदेवी—और उसका नेतृत्व राजयोगी करेंगे।

राजयोगी—प्रजा की आज्ञा होने पर! किन्तु मेरा विश्वास है, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं होगी। मेवाड़ विपरीत परिस्थितियों में पड़कर भी साहस नहीं छोड़ता। कभी स्वाभिमान के विपरीत शत्रु से संधि नहीं करता। समय पर उसे कभी नेतृत्व का अभाव भी अनुभव नहीं हुआ। एक नहीं सहस्र पृथ्वीराज प्रजा में से ही प्रकट हो जाएंगे। महाराणाजी, आप विश्वास को न छोड़िए।

महाराणा रायमल—आपने मेरे असमंजस को दूर कर दिया है। दुविधा के सारे बादल दूर हो गए हैं। महाराणा रायमल के हृदय में बसने वाला पिता भले ही आज अपने सभी पुत्रों के वियोग से व्याकुल हो, किन्तु उसकी यह व्याकुलता उसको कर्तव्य-पथ से विमुख नहीं कर सकेगी। सूरजमल के आगे अथवा विदेशी सत्ताओं के सम्मुख मस्तक टेकने की

कायरता रायमल स्वप्न में भी नहीं करेगा । किन्तु फिर भी उसके मन में इस बार मेवाड़ की विजय के सम्बन्ध में संशय है ही ।

राजयोगी—महाराणाजी, कर्तव्य करना मनुष्य का धर्म है, फल की उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए । किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेवाड़ की ध्वजा इस बार भी झुकेगी नहीं । मेवाड़ की शक्ति को उसके वास्तविक रूप में देखने का अवसर महाराणाजी को प्राप्त होगा । मेरे साथ मेवाड़ की प्रजा के कुछ प्रतिनिधि आपके दर्शन के लिए आए हैं । अच्छा हो आप उन्हें दर्शन देने की कृपा करें ।

महाराणा रायमल—अच्छी बात है, आप उन्हें मन्त्रालय-गृह में लाइए । मैं भी वहाँ पहुँचता हूँ ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—मांडू एवं चित्तौड़गढ़ के मध्य एक पहाड़ी मार्ग । समय—सन्ध्या । सूरजमल और ज्वाला का प्रवेश । सूरजमल समरभूमि में जाने वाले योद्धा के उपयुक्त सशस्त्र अवस्था में है और ज्वाला के हाथ में नंगी तलवार है ।)

ज्वाला—दादा भाई, हमें यहीं ठहरना चाहिए । मैंने यमुना को इसी स्थान पर मिलने का आदेश दिया है ।

सूरजमल—किन्तु वह गई कहाँ है ?

ज्वाला—चित्तौड़ ।

सूरजमल—किन्तु चित्तौड़गढ़ में वह जा भी कैसे सकेगी ?

ज्वाला—क्यों ? जाने में क्या बाधा है ? महाराणा कुम्भा के काल से चित्तौड़-गढ़ के द्वार बन्द नहीं किए जाते । यह तो तुम जानते हो, वह कहते थे

कि चित्तौड़ का एक द्वार दिल्ली है, दूसरा मांझ और तीसरा गुजरात । महाराणा रायमल अपने पूर्वजों की परम्परा का पालन करते हैं ।

सूरजमल—किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि युद्धकाल में भी मेवाड़ चित्तौड़ दुर्ग में आने-जाने वाले व्यक्तियों के प्रति सावधान नहीं रहता । महाराणा कुम्भा के कथन का अर्थ केवल इतना है कि मेवाड़ी वीर चित्तौड़ दुर्ग में बन्द रहकर रक्षात्मक युद्ध करना पसन्द नहीं करते । शत्रु की सीमा में प्रवेश कर आक्रामक युद्ध करना ही उनके प्राणों को प्रिय है ।

ज्वाला—प्रिय भी है और अनुकूल भी ।

सूरजमल—अनुकूल भी, क्योंकि शत्रु के प्रदेश में घुसकर युद्ध करने वाला राजा अपनी प्रजा को युद्धज्वाला की लपटों से बचा लेता है । 'दो भैंसों के युद्ध में बाड़ का चुरकन' वाली कहावत के अनुसार समर-क्षेत्र के आस-पास के प्रदेश को भी विध्वंस का शिकार होना पड़ता है ।

ज्वाला—यह तो ठीक है, किन्तु प्रश्न यह है कि महाराणा रायमल अब आक्रामक युद्ध कर सकने में असमर्थ भी है या नहीं ? मेवाड़ी रक्तबीज के वंशज तो हैं नहीं कि उनके रक्तबिन्दु से नयीन योद्धा तुरन्त जन्म लेकर खड़ा हो जाए । शताब्दियों से एक क्षण के लिए भी मेवाड़ी योद्धाओं को विश्राम करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ । आए दिन सहस्रों मेवाड़ी-सेनानियों को समर-भूमि में चिरनिद्रा में लीन होना पड़ा है । इस समय महाराणा की सैनिक शक्ति सीमित है । अतः मैं समझती हूँ, वह दुर्ग में रहकर ही युद्ध करना उचित समझेगे ।

सूरजमल—मैं भी यही समझता हूँ, संभवतः, महाराणाजी विवश होकर अपने आवेश पर संयम रखेंगे । मुट्ठी भर वीर सैनिकों को खुले मैदान में ले जाकर, अपनी अपेक्षा कई गुनी अधिक सेना से भिडाकर आत्मघाती नीति का पालन नहीं करेंगे । वार्धक्य एवं जीवनव्यापी संघर्षों ने उनके शरीर को जीर्ण भले ही किया हो, किन्तु उन्हें सतर्क तो बनाया ही है । मुझे भय है कि वास्तव में महाराणाजी दुर्ग में रहकर ही युद्ध करेंगे तो हमारे लिए बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जाएगी ।

ज्वाला—ऐसा क्यों कहते हो ?

सूरजमल—क्योंकि चित्तौड़दुर्ग साधारण दुर्ग नहीं है। अलाउद्दीन जैसे अद्भुत साहसी, अनुपम रण-कुशल, अपार सैनिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को चित्तौड़दुर्ग पर विजय पाना टेढ़ी खीर हो गया था। मांडू के इन आधे मन से लड़ने वाले सैनिकों के बल पर क्या हम गढ़ में प्रवेश पा सकेंगे ? गढ़ में प्रवेश पाने का एकमात्र उपाय दीर्घकाल तक उसे घेरे रहना है, ताकि शत्रु को जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव होने पर दुर्ग के द्वार खोलने पड़ें। किन्तु मांडू के सुलतान हमारे लिए सुदीर्घ काल तक लड़ते रहने का धैर्य एवं उदारता दिखा सकेंगे, इसमें मुझे संदेह है।

ज्वाला—दादा भाई, आपका संदेह ठीक है, किन्तु मैं समझती हूँ, हमें अधिक काल तक दुर्ग पर घेरा डालना नहीं पड़ेगा।

सूरजमल—ऐसा तू क्यों समझती है ?

ज्वाला—क्योंकि मैं ऐसा उपाय करना चाहती हूँ जिससे मेवाड़दुर्ग की खाद्य सामग्री शीघ्र से शीघ्र नष्ट हो जाए और मेवाड़ी सेना को बाहर आकर लड़ना पड़े।

सूरजमल—क्या उपाय है वह ?

ज्वाला—वही उपाय करने को यमुना गई है। सिरोही-नरेश भी मेवाड़ की ओर से लड़ने के लिए चित्तौड़ पहुंचे हैं।

सूरजमल—क्या पृथ्वीराज को विष देकर छलपूर्वक मारने वाले सिरोही-नरेश को महाराणा ने क्षमा कर दिया ?

ज्वाला—हां, अपने पुत्र के हत्यारे को क्षमा मांगने पर महाराणा ने अभय-दान प्रदान कर दिया है, क्योंकि उसके प्राण लेने का अर्थ अपनी पुत्री को विधवा बनाना था। वह भी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए अपनी सेना सहित चित्तौड़ जा पहुंचा है। मुझे विश्वास है, समय पर वह हमारा कार्य सफल कर देगा।

सूरजमल—किन्तु यह तो सरासर धोखा है। इस प्रकार छल और प्रपंच से हमने मेवाड़ पर विजय पाई तो उससे हमारे मन को क्या संतोष होगा ?

नहीं ज्वाला, ये ओछे हथियार अपने ही तरकस में रख । सूरजमल इनका प्रयोग नहीं होने देगा ।

ज्वाला—दादा भाई, रण में किसी भी साधन का उपयोग कर लेना अनुचित नहीं । यदि आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाने के आयोजन में हम राजपूतों जैसी धर्मयुद्ध करने की मूर्खता की होती, तो क्या नन्द जैसे सर्वसाधनसम्पन्न शक्तिशाली सम्राट् से वह विजय पा सकते थे ? इतिहास ने न तो चन्द्रगुप्त की निन्दा की, न चाणक्य की । अतः सूरजमल को चन्द्रगुप्त के पदचिह्नो पर चलने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । तुम्हारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य मेवाड़ के राज्य को हस्तगत करना होना चाहिए ।

(एक सशस्त्र भील के रूप में संग्रामसिंह प्रवेश करता है । उसकी कमर में तलवार बंधी है । पीठ पर तूणीर है । एक हाथ में धनुष और दूसरे में बाण है ।)

संग्रामसिंह—(पहचाने जाने से बचने के लिए कृत्रिम स्वर में) सचमुच यह एक विडम्बना है कि एक गहलोत राजकुमार, वीरभूमि मेवाड़ का सपूत विदेशी अत्याचारियों को अपनी मां के वक्षस्थल को रौंदने के लिए आमन्त्रित करता है और अपनी मा के अपमान से प्रसन्न होता है ।

सूरजमल—कौन है तू ?

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) एक भील । आपकी भांति ही मेवाड़ का एक पुत्र ।

ज्वाला—किन्तु किसी वनपुत्र को गहलोत राजवंश के पारस्परिक संघर्ष के बीच पड़ने का दुस्साहम नहीं करना चाहिए ।

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) क्यों नहीं करना चाहिए ? जब राजवंश के पारस्परिक संघर्ष का दुष्परिणाम राज्य की प्रजा के जीवन पर प्रभाव डालता है, तब प्रत्येक प्रजाजन को अपने हित की दृष्टि से उस संघर्ष में भाग लेना आवश्यक हो जाता है; तिसपर भीलों का मेवाड़ के राजवंश पर विशेष अधिकार है । भीलों की सहायता से ही वीरवर बाप्पा रावल

ने चित्तोड़ के देशद्रोही मानसिंह मौर्य के मस्तक से राजमुकुट छीनकर अपने मस्तक पर रखा था । एक भील ने ही गहलोत आदि पुरुष का राजतिलक अपने अंगूठे के खून से किया था और अब भी उसके वंशज मेवाड़ के महाराणाओं का राजतिलक अपने अंगूठे के रक्त से करने की परम्परा का पालन करते हैं । याद रखो, पदभ्रष्ट राजकुमारों में भीलों के रक्त की जिसपर कृपा होगी, मेवाड़ का राजमुकुट उसीके मस्तक पर होगा ।

ज्वाला—भगवान् राम के वंशज गहलोतों का रक्त वनपुत्र भीलों के अविविक्त रक्त की कृपा नहीं चाहता ।

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) क्योंकि उसे विदेशियों के रक्त से अधिक ममता हो गई है, जो अपने अंगूठे के रक्त से नहीं, अपितु अपनी तलवार पर लगे हुए गहलोत-रक्त से ही गहलोत राजपुत्र का अभिषेक करने की साध रखते हैं, और चाहते हैं कि बाप्पा रावल के मस्तक पर गौरवान्वित होने वाला राजमुकुट उनके चरणों का स्पर्श करे ।

सूरजमल—वाचाल भील युवक, गहलोत वंश का राजकुमार सूरजमल मेवाड़ के राजमुकुट की प्रतिष्ठा रखने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देगा, भले ही राजमुकुट उसके सिर पर रहे अथवा किसी दूसरे गहलोत के ।

(संग्रामसिंह अपने चेहरे से नकली दाढ़ी-मूँछें अलग करता है एवं स्वाभाविक स्वर में बोलता है ।)

संग्रामसिंह—जिओ दादा भाई ! मैं तुम्हारे मुंह से यही वीरता और उदारता से भरे हुए शब्द सुनना चाहता था । याद रखो, तुम राजपूत हो, भगवान् राम के वंशज हो, तुम्हारे मुंह से जो शब्द उच्चारित हुए हैं, अब उनका मान रखना तुम्हारे लिए आवश्यक है ।

ज्वाला—(साश्चर्य) कौन, दादा भाई संग्रामसिंह !

सूरजमल—भैया संग्रामसिंह !

(यह कहते हुए सूरजमल संग्रामसिंह को गले लगा लेता है । दोनों की आँखों में प्रेमाश्रु प्रवाहित होते हैं और कुछ देर दोनों कुछ नहीं बोल पाते ।)

इसी समय एक भीलनी के वेश में यमुना आती है, उसके सिर पर बरों से भरी हुई एक टोकरी है।)

यमुना—बेर ले लो रानीजी ! मेवाड़ के जंगलों के बेर । मेवाड़ की बेरियों की भाड़ी के नीचे सिंह रहते हैं रानीजी ! इसलिए समझ लो, कैंसी विपत्ति के मुंह में पांव रखकर ये बेर लाने पड़ते हैं ।

(ज्वाला आंखों ही आंखों में यमुना को संग्रामसिंह और सूरजमल से अलग चलने को संकेत करती है ।)

ज्वाला—(यमुना से) बड़ी आई बेर वाली, निकल यहा गे, नहीं तो.....।
(तलवार दिखाती है ।)

यमुना—बाप रे, नारी है या नागिन ।

(भय का नाट्य करती हुई यमुना प्रस्थान करती है और ज्वाला तलवार ताने हुए उसके पीछे जाती है, किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् ही लौट आती है मानो यमुना को कुछ आदेश देने के लिए गई हो । इस बीच सूरजमल और संग्रामसिंह भी प्रकृतिस्थ होकर आलिंगन से मुक्त होते हैं ।)

सूरजमल—मुझे तो इस बात का विश्वास था कि एक दिन तुम प्रकट होगे ।

ज्वाला—राजमुकुट के मोह को प्राणों में दबाए हुए कब तक बैठे रहते । सुअवसर जानकर प्रकट हो ही गए ।

संग्रामसिंह—ज्वाला, इतने दिनों बाद हम मिले हैं, फिर भी तू विच्छ की भांति डंक मारती है ?

ज्वाला—दादा भाई, ज्वाला तुम्हारी तरह चेहरा नहीं बदलती । वह भीतर-बाहर एक है; 'मुंह में राम बगल में छुरी' वाली कहावत चरितार्थ नहीं करती । तुम्हारी तरह त्याग का ढोंग नहीं करना चाहती और न दादा भाई सूरजमल को करने देगी । समझते हो कि दो मीठी बातें बनाकर भोले भाई को ठग लो ?

संग्रामसिंह—ज्वाला, अभी तो संग्रामसिंह ने न प्रेम की बात की है, न संग्राम

की। बरसों से विछुड़े बन्धु स्वभाववश रक्त के आग्रह से प्रेमालिङ्गन में बंध गए। आंसुओं में उनके मन की व्यथा बह चली। कदाचित् तुझे यह नहीं भाया, किन्तु इसमें हमारा क्या वश है ? प्रकृति ने अपना काम किया। प्रकृति कहती है, भाई का नाता गले मिलने के लिए है, परस्पर तलवारें तानने के लिए नहीं। किसलिए तुम मेवाड़ की छाती पर विदेशी सेना का ताण्डव कराना चाहती हो ?

ज्वाला—तब तुम बन्द करा दो इस ताण्डव को।

संग्रामसिंह—कैसे ?

ज्वाला—न्याय को आदर दिलाकर ! जिन्होंने मेरा अपमान किया है, उन्हें दंडित करने का मुझे अवसर देकर एवं सूरजमल का मेवाड़ की गद्दी पर न्यायपूर्ण एवं स्वाभाविक अधिकार स्वीकार कर।

संग्रामसिंह—बहिन, तेरा किसने अपमान किया है और किस प्रकार किया है, यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु मान लेता हूं कि मेवाड़ के राजमहल में किसीने तेरा अपमान कर दिया होगा, फिर भी तुझे सोचना चाहिए कि व्यक्तियों का बदला देश से नहीं लिया जाता। 'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे' वाली कहावत चरितार्थ न कर। व्यक्ति का बदला समाज से न ले।

ज्वाला—किन्तु व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। जिन उद्धत नारियों ने मेरा अपमान किया है, वे राजपूतों के उच्च कुल एवं पवित्रता के दम्भ का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनका अनाचार व्यक्तिगत दोष नहीं है। उनके कार्य में सम्पूर्ण समाज की अनुदारता एवं संकीर्णता प्रतिध्वनित हुई है। अतः मेरा क्रोध सम्पूर्ण समाज पर है। मैं तलवार की नोक से मेवाड़ की प्रत्येक क्षत्राणी के वक्षस्थल में लिख देना चाहती हूं कि ज्वाला का जीवन उनके जीवन से कम पवित्र नहीं है।

संग्रामसिंह—बहिन, मानता हूं, तू तलवार की नोक से मेवाड़ की क्षत्राणियों का हृदय विदीर्ण कर डालेगी, किन्तु मुझे संदेह है कि तू उनके मस्तिष्क

में जो लिखना चाहती है वह लिख सकने में क्या सफल हो सकेगी ? मस्तक में ग्रथवा हृदय में लिखने के लिए तलवार रूपी लेखनी बेकार सिद्ध होती है, वहां तो उदारताभरी चितवन और प्रेमभरी वाणी ही सफल हो सकती है ।

सूरजमल—संग्रामसिंह, राजपूत तो केवल तलवार की वाणी में बोलना जानता है ।

संग्रामसिंह—ठीक है, तलवार के धनी वीर भी कहलाते हैं, तलवार का पानी तकदीरें बनाता और विगाड़ता है । बहुत ताकत है तलवार में । लेकिन याद रखो, तलवार को म्यान में रखने की ताकत किसी महा बलवान् आत्मा वाले महापुरुष को ही प्राप्त होती है । दादा भाई; मैं तुममें वह बल भी देखना चाहता हूं ।

ज्वाला—स्वयं अपने आपमें नहीं ?

संग्रामसिंह—ज्वाला, संग्रामसिंह ने अपनी तलवार की ताकत पर बहुत संयम रखा है । उसे खेद है कि क्यों नहीं वह इससे पहले ही रंगमंच पर आया ।

ज्वाला—क्योंकि उसे अपने सभी भाइयों के लड़कर समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा थी ।

संग्रामसिंह—नहीं । उसमें उस समय भाइयों के रणोन्माद को दूर करने की शक्ति नहीं थी । वह स्वयं युद्ध को रोक नहीं सकता था । प्रेम और विश्वास पाने के लिए कभी-कभी शक्ति का सचय करना आवश्यक होता है । दुर्बल व्यक्ति प्रेम भी नहीं पा सकता और विश्वास भी नहीं । आलिंगन करने के लिए भी भुजाओं में ताकत चाहिए । पहले संग्रामसिंह में प्रेमालिंगन करने की शक्ति भी नहीं थी । किन्तु आज अपने भाई को गले लगाने का सामर्थ्य उसमें है । आज उसकी भुजाओं में आलिंगन करने का बल है ।

(यमुना का कुछ सैनिकों सहित प्रवेश)

ज्वाला—किन्तु ज्वाला और सूरजमल के संकल्प के मध्य जो भुजाएं आड़े

आएंगी उन्हें काट डाला जाएगा । (आगत सैनिकों से) बांध लो इन्हें ।

संग्रामसिंह—(हाथ बढ़ाता हुआ अट्टहास करता है ।) हः हः हः, बांधो मुझे ! बहुत चतुर हो ज्वाला तुम । तुमने इन सैनिकों को व्यर्थ ही बुलाया । राखी बांधने वाले बहिन के हाथ क्या भाई को बांधने का बल नहीं रखते ? मनुष्यों के हाथों में बंध सकने की शक्ति संग्रामसिंह में है । (सैनिकों से) बांधो मुझे । अपनी स्वामिनी की आज्ञा का आदर करो ।

(सैनिक संग्रामसिंह की ओर बढ़ते हैं, इसी समय तारा और राजयोगी प्रवेश करते हैं, जिनके साथ सशस्त्र सैनिक हैं, जो यमुना के साथ आए सैनिकों से संख्या में बहुत अधिक हैं । यमुना के साथ आए सैनिक हतप्रभ हो जाते हैं ।)

तारा—ज्वाला, संग्रामसिंह को बांध सकने की शक्ति तुममें या सूरजमल में नहीं है । सूरजमलजी रावण की भांति तप करके वीर मस्तक के बन जाएं तब भी संग्रामसिंह का बाल बांका नहीं कर सकते । (अपने सैनिकों से) बांध लो इन्हें ।

(संग्रामसिंह की ओर बढ़ने वाले सैनिकों की ओर उंगली उठाती है ।)

संग्रामसिंह—नहीं, इन बेचारों का क्या दोष ? इन्हें जाने दो ।

(ज्वाला के सैनिक साश्चर्य संग्रामसिंह की ओर देखते हैं, फिर ज्वाला एवं सूरजमल की ओर । ज्वाला यमुना को आंखों ही आंखों में जाने का इशारा करती है ।)

संग्रामसिंह—(यमुना से) ले जाओ अपने साथियों को ।

(यमुना एवं उसके साथी जाते हैं ।)

तारा—(अपने सैनिकों से) तुम भी जाओ और देखो ये विश्वासघात न करने पाएं ।

(तारा और राजयोगी के साथ आए हुए सैनिक भी प्रस्थान करते हैं । ज्वाला भी जाना चाहती है, किन्तु राजयोगी रोकते हैं ।)

राजयोगी—यह मत समझ ज्वाला कि मेवाड़ सो रहा है। उधर देख, उस पहाड़ी पर वास्तविक शक्ति के दर्शन कर। सहस्रों धनुर्धारी वीर भील योद्धा मालवा के सुलतान की सेना का स्वागत करने को प्रस्तुत है।

सूरजमल—तो सिंह जाल में फंस गया है ?

संग्रामसिंह—इसका अफसोस न करो दादा भाई ! संग्रामसिंह राजपूती परम्परा का पालन करेगा। सूरजमल की उदारता भी उसने देखी है, जब युद्धकाल में रात्रि में पृथ्वीराज उनसे मिलने गया था। ऐसे विशाल हृदय भाई पर संग्रामसिंह श्रोद्धा वार नहीं करेगा। तुम चाहो तो अपने शिविर में लौट जाओ।

सूरजमल—मुझपर दया करोगे ?

संग्रामसिंह—नहीं, तुम्हारी इज्जत करूंगा। छोटा भाई होने के नाते अपने कर्तव्य का पालन करूंगा। संग्रामसिंह अधर्म युद्ध नहीं करेगा। उसमें संग्राम करने की शक्ति है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कसाई बन जाएगा। मेरी तरफ से तुम्हें अपने शिविर में लौट जाने एवं कल प्रातः युद्धभूमि में तलवारे मिलाने की छूट है।

ज्वाला—दादा भाई, यदि आपके हृदय में अपने बड़े भाई के लिए आदर है तो क्यों नहीं महाराणाजी को तैयार करते कि वह ऊदाजी के पुत्र को ही युवराज मान लें। महाराणा अजयसिंहजी ने भी तो अपने पुत्रों के स्थान पर अपने बड़े भाई के पुत्र हमीर को युवराज घोषित किया था।

संग्रामसिंह—इसमें मुझे कब आपत्ति रही है ?

राजयोगी—हा, संग्रामसिंह को कोई आपत्ति नहीं रही है, लेकिन उसे आपत्ति न करने का अधिकार नहीं है। राजमुकुट तो प्रजा के विश्वास का प्रतीक है; जिस पर प्रजा का विश्वास हो, उसे ही राजमुकुट शोभा देता है। यदि तुम विश्वास करते हो कि मेवाड़ की प्रजा का तुम पर विश्वास है, उससे अधिक जितना संग्रामसिंह पर है, तो बड़ी खुशी से सूरजमल मेवाड़ का युवराज बन सकता है।

ज्वाला—प्रजा की इच्छा का तो यहां कोई प्रश्न नहीं है राजयोगीजी, प्रजा को तो राजा का अनुगमन करना होता है ।

तारा—ऐसा ही भ्रांत विचार एक दिन ऊंदाजी के मन में उठा था ।

संग्रामसिंह—दादा भाई, मेवाड़ के राजमुकुट का सचमुच संग्रामसिंह को मोह नहीं है । और सच पूछा जाए तो मेवाड़ के महाराणा को कभी राजा होने का, प्रजा का स्वामी होने का, ऐश्वर्य और वैभव के उपभोग के अधिकारी होने का गर्व करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि वह तो राजा नहीं, एकलिंग का दीवान मात्र है । गलहोत-वंश के राजपुत्र ही क्या, प्रत्येक मेवाड़ी, यहां तक कि वनों में निवास करने वाला भील भी मेवाड़ राज्य का समान रूप से स्वामी है ।

राजयोगी—प्रजा चाहे जिसके मस्तक पर राजमुकुट रख दे । राजवंश के व्यक्तियों को इसमें आपत्ति ही क्यों होनी चाहिए । देखो सूरजमल, उधर आकाश में मालवा की सेना के आने से जो धूल के बादल बने हैं, उन्हें अस्तंगत सूर्य की किरणों ने लाल कर दिया है । क्या तुम मेवाड़ की भूमि को ऐसी ही लाल-लाल करना चाहते हो ?

तारा—ज्वाला, तुम भी सोचो, जिस देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए शताब्दियों से मेवाड़ी वीर मस्तक चढ़ाते आए हैं, जिस देश का सम्मान रखने के लिए महासती पद्मिनी और उनके साथ सहस्रों वीरांगनाओं ने जीते जी जाज्वल्यमान जौहर की ज्वाला में जीवन की आहुतियां दी हैं, उसे एक व्यक्ति के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए, विदेशियों का मांडलिक बना दिया जाए, क्या यह उचित है ? उसे एक व्यक्ति मुकुट के मोह में पड़कर विदेशियों द्वारा पदमदित कराए, क्या यह उचित है ?

ज्वाला—तो तुम लोग चाहते हो कि हम हार मान ले ?

संग्रामसिंह—जब हमारे बीच लड़ाई ही नहीं है, तो हार-जीत का प्रश्न उठता ही नहीं है । संग्रामसिंह का शत्रु सूरजमल नहीं है और सूरजमल का शत्रु संग्रामसिंह नहीं और मेवाड़ से तो दोनों की शत्रुता नहीं है । कम से कम देश के नाम पर हमें एक हो जाना चाहिए । कर्त्तव्य हमें पुकार रहा है । भारत

पर विदेशियों की गृध्रदृष्टि लगी हुई है। वे इसे नोच खाने की घात में हैं। हमारी धमनियों में रक्त है; रक्त में मनुष्यता, वीरता और देश-प्रेम है, तो हमें अपनी शक्ति देश के वास्तविक शत्रुओं से लोहा लेने में लगानी चाहिए।

तारा—हमें केवल सत्ता-लोलुप विदेशी शक्तियों से ही नहीं लड़ना है, बल्कि अपनी उन संकीर्णताओं एवं कुसस्कारों से भी लड़ना है जो ज्वाला जैसी तेजस्विनी और चिर पवित्र नारियों का अपमान करने का दुस्साहस करते हैं। हमें मनुष्य-मनुष्य के बीच की दीवारे गिरानी है।

राजयोगी—दीवारे गिरानी हैं। मेवाड़ के जनसाधारण के मन में भी अपने देश के प्रति उतनी ही ममता जाग्रत करनी है, जितनी गहलोत राजवंश के मन में है। भील और राजपूत एवं सभी अन्य जनसाधारण को एक ध्वजा के नीचे भाई-भाई की तरह एकत्र करना है।

संग्रामसिंह—(ज्वाला से) तुम असाधारण नारी हो। तुममें महान् शक्ति है, यह तुमने प्रदर्शित कर दिया है। इतने दिन तुमने भ्रातिवश विध्वंस की शक्ति प्रदर्शित की; श्रव निर्माण की शक्ति दिखाओ। मेवाड़ राजकुल का मान रखने के लिए जिसने अपने पिता से विद्रोह किया, क्या वह साधारण नारी है? क्यों तुम अपने गौरवमय पद को स्वयं गंवाती हो। सोचो बहिन, इतिहास तुम्हारे लिए क्या कहेगा?

राजयोगी—(ज्वाला के मस्तक पर हाथ रखकर) बेटी, तुमको कब से भवानी अपने मन्दिर में बुला रही है। तुम तो नित्य उसके मन्दिर में पूजा करने आती थी। भवानी को इस बात का दुःख है कि तुम दैत्यों के दल में जा मिली हो। वह दैत्यों पर शस्त्र चलाने में सकोच नहीं करती, किन्तु तुमने तो कितनी ही बार भक्ति से गद्गद् होकर अपने आंसुओं का हार उसे पहनाया है। वह तुम्हारे उस रूप को नहीं भूल पाती। वह तुम पर शस्त्र कैसे उठाए! तुम कितने काल से निरन्तर उसके हृदय पर प्रहार कर रही हो, उसने तुम्हारे प्रहार वात्सल्यमयी क्षमाशील मां की भांति सहे हैं और सह सकने की उसमें शक्ति है। मेवाड़ पर

प्रहार करना भवानी के हृदय पर प्रहार करना है । बेटा ! बोलो, कब तक तुम मां भवानी से विद्रोह करती रहोगी ।

ज्वाला—यदि स्वत्व और सम्मान की रक्षा करने का यत्न करना भवानी के आदेश के विरुद्ध है, तब तो ज्वाला भवानी से भी विद्रोह करेगी । स्वयं भवानी मेवाड़ की वर्तमान अन्यायी राजसत्ता के पक्ष में युद्ध करने आए तब भी ज्वाला युद्ध से विमुख नहीं होगी ।

संग्रामसिंह—दादा भाई, तुम क्या कहते हो ?

सूरजमल—मेरा मस्तक काटकर भवानी के चरणों पर चढ़ा दो !

संग्रामसिंह—किन्तु मेवाड़ सूरजमलजी के सबल कन्धों पर अवस्थित सजीव उन्नत मस्तक की मांग करता है । उसे उनकी सबल सुदीर्घ भुजाओं की चाह है, जो हाथों में खड्ग धारणकर मेवाड़ के शत्रुओं का हृदय विदीर्ण करती रहें ।

सूरजमल—संग्रामसिंह ! मेवाड़ की यह चाह तभी पूर्ण हो सकेगी जब सूरजमल के मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट रखा जाएगा । सूरजमल बार-बार मार्ग नहीं बदलता ।

संग्रामसिंह—मैं तो कह चुका हूँ, संग्रामसिंह दादा भाई की आकांक्षा के पथ में नहीं आएगा ।

तारा - किन्तु मेवाड़ के महाराणा अथवा प्रजाजन देशद्रोही को राजगद्दी के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे ।

सूरजमल—सूरजमल की तलवार में ताकत होगी तो वह मेवाड़ से अपनी बात मनवा लेगा ।

तारा—हः हः, मनवा लेगा । इस समय तो आपका जीवन भी हमारी दया पर निर्भर है । आपका यहां से अपने शिविर तक जा सकना भी असम्भव है ।

ज्वाला—किन्तु हमें जीते जी बंदी बनाने की शक्ति भी किसी में नहीं है ।

संग्रामसिंह—किन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ—संग्रामसिंह क्षत्रित्व को लज्जित नहीं करेगा । अपने भाई-बहनों को बन्दी बनाने अथवा उनका

मस्तक काटने के लिए संग्रामसिंह नहीं आया । आप लोग जा सकते हैं, अपने सहायकों की छत्रछाया में पहुँच सकते हैं ।

(ज्वाला और सूरजमल साश्चर्य संग्रामसिंह की ओर देखते हैं ।)

संग्रामसिंह—विश्वास नहीं होता मेरी वाणी पर ?

सूरजमल—विश्वास क्यों नहीं, गहलोत-वंश में जन्म लेने वाला राजपूत किसी की पीठ पर आघात नहीं करेगा । अच्छी बात है, कल हमारी तलवारें मिलेगी । सम्भवतः यह सूरजमल के जीवन का अन्तिम युद्ध होगा । कल मेवाड़ के भाग्याकाश से गृह-कलह के वादल अन्तिम रक्तवर्षा करके समाप्त हो जाएंगे । (ज्वाला से) चलो ज्वाला !

(ज्वाला और सूरजमल का प्रस्थान)

तारा—(संग्रामसिंह से) किन्तु ...

संग्रामसिंह—(तारा की बात काटकर) मैं जानता हूँ, तुम क्या कहना चाहती हो । शत्रु को मुट्ठी में पाकर छोड़ देना मूर्खता है, लेकिन तारा, मैं मेवाड़ की राजनीति को एक नए ही रास्ते पर ले जाना चाहता हूँ । कल सूरजमल और संग्रामसिंह की तलवारें टकराएंगी और दमी टक्कर से जो विद्युत्-प्रकाश होगा, उसी में हमें स्नेह का मन्दिर दिखाई देगा । चलो, अब हमें भी शिविर पर चलना चाहिए ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

आठवां दृश्य

(स्थान—प्रथम अंक के प्रथम दृश्य वाला । समय—सन्ध्या । पर्व उठता है तो महाराणा रायमल एवं महारानी शृंगारदेवी, दोनों रण-सज्जा-सज्जित, कीर्ति-स्तम्भ के निकट खड़े दिखाई देते हैं ।)

महाराणा रायमल—महारानी, अस्तोन्मुख दिवाकर की अन्तिम रश्मियों ने

आकाश को लाल कर दिया है ।

शृंगारदेवी—जान पड़ता है, सूर्यदेव ने : : : : : की हलके नीले रंग की चूनरी पर गहरा लाल रंग डाला है ।

महाराणा रायमल—शृंगारदेवी, अद्भुत रंगीन उपमा दी है तुमने ! हाथों में शस्त्र पकड़ लेने पर भी तुम्हारे जीवन की रंगीनी समाप्त नहीं हुई ।

शृंगारदेवी—महाराणाजी, राठौर-पुत्री एवं गहलोत राजरानी शृंगारदेवी को गहरा रंग ही प्रिय है ।

महाराणा रायमल—हां, कुसुंवा का भी गहरा रंग । नशे का भी गहरा रंग ।

शृंगारदेवी—हां, दुःख का भी गहरा रंग, क्रोध का भी गहरा रंग, सर्वनाश की ज्वाला का भी गहरा रंग । उसने अपने हाथों में तलवार भी पकड़ी है तो मेवाड़भूमि को गहरे लाल रंग से रंग देने के लिए ही । मैं तो युद्ध की रंगीन घड़ी को तुरन्त निकट लाना चाहती हूं । कब तक हम प्रतीक्षा करते रहेगे कि शत्रु चित्तौड़ पर घेरा डाले । हमें बढ़कर मैदान में उससे लोहा लेना चाहिए ।

महाराणा रायमल—मैं भी प्राणों को प्रपीड़ित करने वाली प्रतीक्षा की बेचैन घड़ियों को समाप्त कर देना चाहता हूं । अस्तोन्मुख भास्कर की भांति भूमि और अम्बर को गहरे रक्तिमय रंग से रंगकर मैं ससार से अंतर्धान हो जाना चाहता हूं ।

(दूर से आता हुआ शंख, भेरी एवं नगाड़ों का नाद सुनाई देता है ।)

शृंगारदेवी—सुना महाराणाजी, आपके स्वर में स्वर मिलाकर दिशाएं भी शंखनाद कर उठी हैं ।

महाराणा रायमल—और इधर देखो, धूल का एक बादल-सा उठ रहा है ।

शृंगारदेवी—जान पड़ता है, जोधपुर से राठौर-सेना हमारी सहायता के लिए आ पहुंची है ।

महाराणा रायमल—राठौर-सेना ?

शृंगारदेवी—हां महाराणाजी, मैंने मेवाड़ की दुर्बल स्थिति देखकर जोधपुर

सन्देश भेजा था । जोधपुर के राठौरों और मेवाड़ के गहलोतों की सम्मिलित शक्ति मालवा के सुलतान के छक्के छुड़ा देगी । सिरौही-नरेश भी अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए पहले ही सदलबल आ गए हैं ।

महाराणा रायमल—यह सब ठीक है, फिर भी राजकुमारों के अभाव में मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो, मेरी भुजाएं कट गई हैं । राठौर-सेना एवं सिरौही की सेना को भी गिन ले, तब भी हमारी सेना शत्रु की विशाल वाहिनी के सम्मुख समुद्र की तुलना में छोटी भील के समान है । निरन्तर युद्धरत रहने के कारण हमारे सैनिक समाप्त हो गए हैं ।

शृंगारदेवी—किन्तु फिर भी हमारी सेना में आत्मविश्वास का अभाव नहीं है ।

महाराणा रायमल—आत्मविश्वास न कहो शृंगारदेवी, वलिदान-भावना कहो, मर मिटने की भावना कहो, एक पागलपन कहो । किन्तु मैं पूछता हूँ, इस पागलपन के साधन से क्या हम इस कीर्ति-स्तम्भ को स्थिर रख सकेंगे ? उस दिन लाल-लाल रक्त के रंग से अनुरजित प्रभात था, जब तीनों राजकुमारों को मैंने इसी कीर्ति-स्तम्भ के निकट एकत्र कर कहा था—इसकी आधार-शिलाएं कांप रही हैं । अदृश्य के कठोर हाथों ने राजकुमारों को हमसे छीन लिया । वे होते तो अपनी सबल भुजाओं द्वारा इस कीर्ति-स्तम्भ की रक्षा करते । अब तो मैं एक सर्वनाशी ज्वाला को चित्तौड़ दुर्ग के भीतर और बाहर प्रज्वलित होते देख रहा हूँ ।

(सहसा एक विस्फोट सुनाई देता है ।)

शृंगारदेवी—यह विस्फोट कैसा ? यह तो दुर्ग के भीतर ही हुआ जान पड़ता है । लो, धुएं के काले-काले बादल उड़कर आकाश को आच्छादित करने लगे ।

महाराणा रायमल—धुएं के बादल ही नहीं छा रहे, अपितु ज्वाला की सर्वभक्षी सहस्रों जिह्वाएं लपलपा उठी हैं । यह ज्वाला उधर प्रज्वलित हुई जान पड़ती है, जिधर हमारा अन्न का भंडार है ।

शृंगारदेवी—अर्थात् हमारे किसी व्यक्ति ने विश्वामघात किया है ।

(शंख, भेरी और नगाड़ों की ध्वनि एवं घोड़ों की टापों की आवाज अधिक निकट आती है ।)

महाराणा रायमल—सुनती हो, यह तुमुल नाद निकटतर आ रहा है । एक ओर आकाश को छूने वाली लपटें हमें अपनी गोद में बिठा लेने को लालायित हैं, दूसरी ओर शत्रुसेना का तुमुल नाद हमारे वक्षस्थल को विदीर्ण कर रहा है । महारानी, हमें राजवलि देने को प्रस्तुत हो जाना चाहिए, जिसे तुम राठौरी की सेना समझती हो, वह वास्तव में शत्रु सेना है ।

भृंगारदेवी—मालवा के सुलतान की सेना का आगमन शंखनाद से घोषित नहीं हो सकता, महाराणाजी !

महाराणा रायमल—किन्तु, सूरजमल तो शंखनाद करता हुआ ही चित्तौड़ में प्रवेश करेगा । आज असत्य के आगे सत्य, पाप के आगे पुण्य को पराजित होना ही पड़ा । जिस मेवाड़ भूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिए शताब्दियों से वीर योद्धाओं एवं वीरांगनाओं ने प्राणों की आहुतियां दी हैं, उसे कुछ दुष्ट और दम्भी मेवाड़ियों के दुराग्रह से विदेशियों द्वारा पददलित होना पड़ेगा । यह जयदान मेवाड़ के शत्रुओं का है ।

(शंख-ध्वनि करते हुए राजयोगी का प्रवेश)

राजयोगी—नहीं महाराणाजी, यह जयघोष मेवाड़ी योद्धाओं का ही है ।

महाराणा रायमल—मेवाड़ी सेना को तो मैंने गढ़ में ही एकत्र कर रखा है । अभी तो शत्रु का चित्तौड़ पर आक्रमण ही नहीं हुआ, जय का क्या प्रश्न ?

राजयोगी—महाराणाजी, शत्रु को चित्तौड़ तक आने देना मेवाड़ के वीर योद्धाओं ने अपना अपमान समझा और संसार जानता है कि मेवाड़ का प्रत्येक व्यक्ति संकट-काल में स्वेच्छा से शस्त्र धारण कर सकता है ।

(हाथ में मेवाड़ की राजपताका लिए एक भील सैनिक के छद्म-वेश में संग्रामसिंह का तथा सूरजमल और ज्वाला को बंदी बनाए हुए कुछ भील सैनिकों का प्रवेश ।)

तारा—मेवाड़ के सम्मान के संरक्षक, मेवाड़ के सच्चे सपूत आज मालवा के सुलतान की सेना को पराजित कर कुल और देश से द्रोह करने वाले सूरज-मल और ज्वाला को बन्दी बनाकर महाराणाजी का आशीर्वाद प्राप्त करने आए हैं ।

शृंगारदेवी—किन्तु उधर देखो, वह ज्वाला भी तुम्हारी सेना ने ही प्रज्वलित की है ।

तारा—नहीं, हम तो स्वयं ही इस ज्वाला को देखकर आश्चर्यचकित है । मैंने तो यह समझा था कि हमारी सेना को शत्रुसेना समझकर चित्तौड़दुर्ग में स्थित क्षत्राणियां जोहर की ज्वाला को प्रज्वलित कर अपने सम्मान की रक्षा के लिए महासती महारानी पद्मिनी की परम्परा का पालन कर रही है ।

(यमुना का प्रवेश)

यमुना—(ज्वाला से) अनर्थ हो ही गया राजकुमारी ! मैं उन्हें रोक नहीं पाई । सिरोही-नरेश ने मालवा की सेना को निकट आई जानकर योजना के अनुसार अन्नागार में आग लगा ही दी, किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह मेवाड़ की विजयी-सेना है, तो उन्होंने भी अग्नि में प्रवेश कर जीवनाहुति दे दी ।

ज्वाला—सचमुच अनर्थ हो गया, यमुना !

यमुना—(महाराणा से) महाराणाजी, इस अनर्थ का कारण मैं हूँ, मुझे दंड दीजिए । मेरे ही कारण राजकुमार पृथ्वीराज के प्राण गए । मैंने ही पिशाचिनी बनकर राजकुमारी आनन्ददेवी की मांग का मिन्दूर चाट लिया । महाराणाजी, मुझ हत्यारिन को दंड दीजिए ।

महाराणा रायमल—(राजयोगी से) राजयोगीजी, मैं यह सब क्या देख और सुन रहा हूँ ? आपने आते ही कहा—आप मेवाड़ी सेना का जयघोष सुन रहे हैं, किन्तु मुझे न तो कहीं मेवाड़ी सेना दिखाई देती है न कहीं जयघोष सुनाई देता । मुझे तो इस समय मेरी पुत्री के सौभाग्य

को निगल लेने वाली ज्वाला ही दिखाई दे रही है। वर्तमान में तो क्या, भविष्य के गर्भ में भी मुझे तो भयंकर ज्वाला की लपटें दिखाई दे रही हैं। राजयोगी, मेरे प्राण इस अनुताप को सह नहीं सकते। अब तो मुझे भी उस भयानक ज्वाला की गोद में बैठकर प्राणों की ज्वाला को शांत करना होगा।

राजयोगी—आप जैसे दृढ़ निश्चयी वज्रहृदय महान् व्यक्ति को विचलित नहीं होना चाहिए। आगामी पीढ़ी को सुखी बनाने के लिए इस पीढ़ी को सब प्रकार की यातनाएं सहनी पड़ेंगी। जो व्यक्ति अपने मस्तक पर राजमुकुट धारण करता है, उसे सबसे अधिक बलिदान देना पड़ता है।

ज्वाला—काकाजी, विध्वंस का खेल अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर अब समाप्त हो गया है। खेल में हार कैसी? जीत कैसी? अनुताप कैसा? शान्ति कैसी? आप क्षत्रिय हैं, भगवान् राम के वंशज हैं, आपका जीवन लोक-कल्याण के लिए है। क्रोध में आकर मैने और दादा भाई ने मेवाड़ की राजलक्ष्मी को रक्त के समुद्र में विसर्जित करना चाहा, किन्तु आपके तेजस्वी और दूरदर्शी पुत्र ने इस दूबती हुई नैया को उबार लिया और हमें भी उबार लिया।

महाराणा रायमल—मेरा पुत्र? कौन-सा पुत्र?

(संग्रामसिंह आगे बढ़कर महाराणा के चरण छूता है।)

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) मेवाड़ का प्रत्येक व्यक्ति आपका पुत्र है।

सूरजमल—और इस नाते सूरजमल भी आपका पुत्र है। बंधे न हों तो मेरे हाथ जो कल तक आपके मस्तक के ग्राहक रहे हैं, वे आपके चरणों की रज अपने मस्तक पर धरने में सौभाग्य मानें।

संग्रामसिंह—(नकली दाढ़ी-मूँछें हटाकर) दादा भाई, मेवाड़ यही तो आपके मुख से सुनना चाहता था। (भील सैनिकों से) बंदियों के बंधन खोल दो (सैनिक ज्वाला और सूरजमल के बन्धन खोलते हैं।) संग्रामसिंह ने सारे मेवाड़ियों को बंधन मुक्त करने के लिए वनवास और अज्ञातवास

का व्रत लिया था । आज उसके प्रकट होने की स्वर्णबेला आ गई है ।

महाराणा रायमल—(संग्रामसिंह को कलेजे से लगाकर) बेटा, आज मैं हंसू या रोऊँ, क्या करूँ । (आंखों से अश्रु प्रवाहित होते हैं ।)

भृङ्गारदेवी—(संग्रामसिंह के मस्तक पर हाथ रखकर) बेटा ! आज तुममें मेवाड़ का सम्पूर्ण सौभाग्य और गौरव लौट आया है । (अश्रु प्रवाहित होते हैं ।)

सूरजमल—(महाराणा रायमल के चरणों में मस्तक रखकर) गंगा-यमुना की पवित्र धाराओं के समान, इन आंखों के अश्रु-प्रवाह में मैं अपनी पाप-कालिमा को धोकर नया ही व्यक्ति बन जाना चाहता हूँ । (आंखों में आंसू छा जाते हैं ।)

महाराणा रायमल—(प्रकृतिस्थ होकर संग्रामसिंह और सूरजमल को अपने निकट खड़ाकर) मेवाड़ की शक्ति, सम्मान और विश्वास के प्रतीक राज-कुमारों, स्वर्ग में बैठे हुए वीरवर कुम्भाजी की वाणी को सुनो ।

राजयोगी—वे कह रहे हैं—स्वार्थ, अभिमान और क्रोध में आकर कभी जन्म-भूमि के हित को मत भूलो । सन्ता और सम्मान पाने के लिए प्रतिस्पर्धा की भूल मत करो । क्षणिक लाभ के लिए देश के शत्रुओं को मित्र समझने की भूल मत करो । देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने समान समझो ।

महाराणा रायमल—और अपने मस्तक पर राजमुकुट धारण कर अपने आपको एकलिंग का दीवान समझो, राजा नहीं । तभी तुम इस कीर्ति-स्तम्भ की रक्षा कर सकोगे ।

राजयोगी—मेवाड़भूमि की जय !

सब—मेवाड़भूमि की जय !

[पटाक्षेप]



राजपाल एण्ड सन्स

कश्मीरी गेट, दिल्ली-६